शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 9 अंक 35

त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका 10 जुलाई, 2025

पीयर रिव्यू समिति :

प्रो.(डॉ.) शांति नायर

प्रो (डॉ.) के श्रीलता

प्रो.(डॉ.) बी.अशोक

मुख्य संपादक
डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक
डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक
प्रो.सती के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजापी

संपादक मंडल
डॉ.बिन्दु सी.आर
डॉ.षीना यू.एस
डॉ.सुमा आई
डॉ.एलिसबत जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी एस.एस
डॉ.धन्या एल
डॉ.कमलानाथ एन.एम
डॉ.अश्वती जी.आर

इस अंक में

संपादकीय

स्वतंत्रता-संग्राम : बशीर के कथा साहित्य में : डॉ.जयकृष्णन.जे 4

आंचलिक उपन्यासों मे साम्प्रदायिकता : डॉ.मन्जू कोगियाल 7

यज्ञ विज्ञान द्वारा समग्र स्वास्थ्य : डॉ.मनन कुमार अग्रवाल, रघुवीर पटेल 11

'एक सच्ची झूठी गाथा' में व्यक्त जीवन-यथार्थ : डॉ.लक्ष्मी एस एस 14

भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण में हिन्दी साहित्य का योगदान (भक्ति साहित्य के विशेष संदर्भ में) : डॉ .गोपकुमार जी 17

छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव 'उच्चभूमि' में जनजातियों का साक्षरता विकास स्तर :डॉ. खेमचंद 22

सभ्यता और स्त्री-मुक्ति का परस्पर संबंध: अनामिका के उपन्यास 'आईना साज़' के संदर्भ में : विनीजा विजयन 26

बेमेतरा जिले में ग्राम स्तर पर प्राप्त जन सुविधाएँ एवं शिशु मर्त्यता: एक भौगोलिक विश्लेषण : डॉ. मधु 32

रंगमंच सम्राट 'बालगंधर्व' : डॉ. प्रियंका 38

किसान समस्याएँ: 'फाँस' उपन्यास के विशेष संदर्भ में: डॉ .धन्या बी 44

उत्तर प्रदेश में महिला सशक्तीकरण के विविध आयाम : पंक्षी देवी, डॉ.नीति त्रिवेदी 46

सही उत्तर चुनें : डॉ.पी.लता 50

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

डॉ.पी.लता
संपादक
शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य :
एक प्रति - रु.100/-
वार्षिक शुल्क - रु.400/-

पत्रिकाके संबंध में अधिकजानकारीकेलिए संपर्ककरें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 9946679280, 9946253648

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

संपादकीय

बैसरन घाटी हादसा

इस दुनिया में जीव-मनुष्य पशु, पक्षी और पौधे- जन्म लेते हैं। प्रत्येक जीव का एक निश्चित जीवन काल होता है और जीवन काल पूरा होने पर देहांत भी होता है। जन्म लेना और मृत्यु होना जीवन के अनिवार्य सत्य हैं।

जीवों की मृत्यु एक अपरिहार्य प्रक्रिया है, जो कई कारणों से होती है, जैसे-बुढ़ापा, बीमारी, मोटर दुर्घटना आकस्मिक हृदयाघात, अकस्मात् हमला, आत्महत्या, प्राकृतिक प्रकोप (जैसे-भूकंप, प्रलय, सूखा, भूस्खलन आदि)। वृद्धावस्था या सख्त बीमारी के कारण सहज मृत्यु या प्राकृतिक मृत्यु होती है। आयु पूर्ण होने पर यानी बुढ़ापे में हमारे प्रिय जनों का मृत्यु को प्राप्त करना ही उत्पीड़न की बात है तब प्रिय जनों में किसीकी अकाल में मृत्यु होना ज़रूर असहनीय है।

फिलहाल कई सम्मानित व्यक्ति वृद्धावस्था में हमें नष्ट हुए हैं, जिन्होंने अपने जीवन काल में अपने-अपने कार्यक्षेत्र- जैसे लेखन, अध्यापन, प्रशासन आदि- में अमिट छाप छोड़ी है। हाल ही में बुढ़ापे में दिवंगत केरल के तीन हस्ती हैं- श्री एम टी वासुदेवन नायर, प्रो.के.के.कृष्णन नंपूतिरि और प्रो.हरिहरन उण्णित्तान। केरल के अमर मलयालम कथाकार, पटकथाकार और फिल्म निदेशक श्री एम टी वासुदेवन नायर 91 वर्ष की आयु में (जन्म 15 जुलाई 1933, मृत्यु 25 दिसंबर 2024) दिवंगत हुए। सन् 1995 में ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता बने वासुदेवन नायर जी सन् 2005 में पद्मभूषण से तथा सन् 2025 में मरणोपरांत पद्मविभूषण से विभूषित हुए। केरलीय हिंदी लेखक, यूनिवेर्सिटी कॉलेज (तिरुवनंतपुरम) के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष तथा वेद पंडित प्रो.के.के.कृष्णन नंपूतिरि 91 वर्ष की आयु में (जन्म- 7 जनवरी 1934, मृत्यु 21 जनवरी 2025) गुज़र गए। केरलीय हिंदी लेखक तथा कई स्तरीय हिंदी कविताओं के मलयालम अनुवादक प्रो.हरिहरन उण्णित्तान 86 वर्ष की आयु में (जन्म- 4 जून 1939, मृत्यु -5 मई 2026) चल बसे। केरल के इन मृत व्यक्तियों की देन इतनी विलक्षण है कि मलयालम के एम.टी वासुदेवन नायरजी तथा केरल के हिंदी क्षेत्र के व्यक्ति प्रो.के.के.कृष्णन नंपूतिरि जी और प्रो.हरिहरन उण्णित्तान जी चिर स्मरणीय ही रहेंगे।

दुर्घटना दुर्भाग्यपूर्ण घटना है, जो अनपेक्षित है। दुर्घटना के परिणामस्वरूप कायिक क्षति हो सकती है और यह प्राणघातक भी हो सकती है। यह अक्सर अचानक और अनजाने में होती है। सड़कों में मोटरों के टकराने से कितने प्राण नष्ट होते हैं। अकस्मात् किसी के आक्रमण का शिकार होना भी प्राण नष्ट होने का कारण बनता है। ऐसा एक है 22 अप्रैल 2025 का बैसरनघाटी हादसा।

धरती का स्वर्ग माने जाने वाले कश्मीर के श्रीनगर से 95 किलोमीटर की दूरी पर अनंतनाग जिले में स्थित प्रकृति रमणीय भूप्रांत है 'पहलगाम', जिसका मूल नाम है 'बैलगाम', जो घने जंगलों, सुंदर झीलों, नदियों, फूलों के घास के मैदानों, हिम ढके पर्वतों आदि से घिरा हुआ है। इस पहलगाम के मुख्य बाज़ार से करीब छः किलोमीटर दूर स्थित पहाड़ी घास का मैदान है 'बैसरन घाटी।' घने देवदार के जंगल 'बैसरन' के हरे मैदान को बर्फ से ढकी चोटियों के बीच अलग ही शोभा देते हैं। बैसरन के सुंदर नज़ारों के कारण इसे 'मिनी स्विट्ज़रलैंड' भी कहा जाता है। पहलगाम से बैसरन को जोड़नेवाला छः किलोमीटर का कच्चा रास्ता इतना तंग है कि यहाँ तक पर्यटक पैदल या टट्टू की सवारी से ही पहुँचा जा सकता है। यहाँ तक अन्य गाड़ियों में जाना असंभव है। बैसरन लोकप्रिय ट्रेकिंग स्थल है।

यहाँ 22 अप्रैल 2025 की सबह को बंदूकधारी हमलवारों का पर्यटकों पर चरमपंथी हमला हुआ। निर्दोष हिंदू नागरिकों (पर्यटकों) को निशाना बनाकर उन्होंने गोलीबारी की। इस हमले में 26 व्यक्ति मारे गए। मारे गए व्यक्तियों में 25 पर्यटक थे और एक स्थानीय युवक भी। 20 पर्यटक घायल भी हुए।

22 अप्रैल 2025 के इस हमले में यही हुआ था कि आतंकियों ने बैसरन का सौंदर्य चखनेवाले पर्यटकों को गोली मारने से पहले पुरुषों को उनकी

स्त्रियों से अलग करके उनका धर्म पूछा, क्योंकि आतंकियों ने हिंदू पुरुषों को निशाना लगाया था। 25 पुरुषों को उनकी स्त्रियों के सामने गोली मार दी गई। गोली लगकर मरा स्थानीय पुरुष आदिल पहलगाम में घोड़े चलाकर गुज़र-बसर करने वाला युवक था, जो अपने घर का इकलौता कमानेवाला सदस्य था। बैसरन में बंदूकची आतंकियों के हमले के समय स्थानीय पुरुष-टट्टू सवारी संचालक-आदिल ने पर्यटकों को बचाने के लिए आतंकियों से बंदूक छीनने की कोशिश की और निर्दय बंदकचियों से मारा गया। पर्यटकों में नवविवाहित ज़ोड़े भी थे। आतंकियों ने उन्हें भी नहीं छोड़ा, जिससे नवोढ़ाओं को वैधव्य प्राप्त हुआ। बड़ी क्रूरता से आतंकियों ने विविध राज्यों से कश्मीर देखने आये निर्दोष नागरिकों को मारा, इस पर पूरा देश ही दुःखी हुआ। किंतु हमलवारों को क्या दुःख! उनका विचार बिना निशाना चूके लक्ष्य प्राप्त करना मात्र था। वे क्या स्नेह का मूल्य जानते हैं? वे जानते हैं यही कि जिन्हें वे शत्रु मानते हैं उन्हें मर मिटाना। निशानेबाज़ों की गोलीबारी शिकार की माता के सामने हो; शिकार की पत्नी, भाई, बहन या संतानों के सामने हो इसकी वे ज़रा भी परवाह नहीं करते हैं। मानव पशुता छोड़कर मात्र मानवता दिखायें तो यह दुनिया कितनी सुन्दर बनती!

डॉ.पी.लता
संपादक, शोध सरोवर पत्रिका
(मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी)।

स्वतंत्रता-संग्राम : बशीर के कथा साहित्य में

◆डॉ.जयकृष्णन.जे

शोध सार : स्वतंत्रता-संग्राम के दौर में साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से आज़ादी की ज्वाला को जलाए रखते हुए देश की स्वतंत्रता के लिए विशेष योगदान दिया। उन्होंने अपनी वाणी से देश की आम जनता के अंदर जोश भर दिया। ऐसे कलमकारों में केरल के वैक्कम मुहम्मद बशीर का अहम स्थान है। अधिकतर लेखक कलम से अपनी भूमिका बखूबी निभाते रहे, तो बशीर ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लिया। राजनीतिक कार्यकर्ता होने के नाते उनको कई बार जेल की सज़ा भी भुगतनी पड़ी। इसप्रकार कैदियों के जीवन को देखने, सुनने और अनुभव करने का अवसर उनको प्राप्त हुआ। इन अनुभवों को उन्होंने अपनी रचनाओं में रेखांकित किया।

बीज शब्द: स्वतंत्रता आन्दोलन, वैक्कम मुहम्मद बशीर, बशीर की कहानियाँ।

वैक्कम मुहम्मद बशीर मलयालम के लोकप्रिय कथाकार हैं। केरल के कोट्टयम जिले के वैक्कम में सन् 1908 में उनका जन्म हुआ। वैक्कम के स्कूल में पढ़ते समय गाँधीजी को देखने का मौका मिला। वे गाँधीजी के विचारों से प्रभावित हुए और खादी पहनना शुरू किया। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु से भी वे बेहद प्रभावित थे। नमक सत्याग्रह में भाग लेने के कारण वे बुरी तरह पिट गए और जेल की सज़ा भी मिली। जेल से रिहाई होने पर उन्होंने ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन का आयोजन किया और 'उज्जीवन' नाम से एक क्रांतिकारी पत्रिका का संपादन किया। इसके कारण फिर गिरफ्तारी वारंट ज़ारी किया गया। उनको केरल छोड़ना पड़ा। वापस आने पर फिर गिरफ्तार हुए। सात साल तक एशिया और अफ्रीका के भ्रमण ने उन्हें अनेक अनुभव प्रदान किए। अपना पेट भरने के लिए उन्हें कई प्रकार की नौकरियाँ करनी पड़ीं और उन्होंने जीवन को उसकी समग्रता और संपूर्णता में देखा और जाना। बशीर को कई बार कारावास का दण्ड मिला। जेल-जीवन उनको पढ़ने और लिखने का समय था। जीवन-संघर्षों ने उन्हें लेखक बना दिया। बशीर 'बेप्पूर सुलतान' के नाम से जाने जाते हैं। स्वतंत्रता-संग्राम के अवसर पर भारत के कई लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से आज़ादी की लड़ाई में भागीदार बने। संग्राम में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने वाले साहित्यकारों की तादाद बहुत कम थी।

बशीर मलयालम के उन गिने-चुने साहित्यकारों में एक हैं जिन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया था। उन्होंने करीब एक सौ कहानियाँ और एक दर्जन लघु उपन्यासों की रचना की। बशीर की पहली रचना 'प्रेमलेखनम' (लघु उपन्यास) का प्रकाशन सन् 1943 में हुआ था। उन्होंने 'कथाबीजम' नामक एकांकी और 'यादों के तहखाने' शीर्षक आत्मकथा भी लिखीं। 'पात्तुम्मयुटे आटु' (पात्तुम्मा की बकरी), 'बाल्यकालसखी' (बचपन की साथी), 'न्टुप्पाप्पाक्कोरानेन्टारन्नु' (मेरे दादा के एक हाथी था), 'मतिलुकल' (दीवारें) आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। भारत सरकार ने उन्हें सन् 1992 में पद्मश्री से सम्मानित किया।

बशीर का कथा-साहित्य विविधताओं से भरा हुआ है। उनकी कहानियों में नवजागरण और स्वतंत्रता आन्दोलन का स्पष्ट प्रभाव है। उनके साहित्य में आत्मकथांश की मात्रा बहुत अधिक है। दिन-प्रतिदिन हमारे जीवन में घटित होने वाली मामूली घटनाओं को कहानी का रूप देने की असाधारण क्षमता उनमें है। बशीर को अपने जीवननानुभवों से कहानियों और उपन्यासों का बीज मिला है। उनकी 'जन्मदिन' कहानी (1945) जन्मदिन में भूखे रहने वाले एक व्यक्ति की कहानी है। बशीर को अपने जीवन में कठिन आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा था। उनको स्थाई आमदनी मिलने वाली कोई नौकरी नहीं थी। साहित्य-सृजन के शुरुआती दौर में पत्रिकाओं में जो रचनाएँ प्रकाशित होती थीं, उनके लिए पारिश्रमिक नहीं मिलता था। 'जन्मदिन' कहानी का आरंभ इसप्रकार होता है – "माघ महीने की आठवीं तारीख। आज मेरा जन्मदिन है। रोज़ से अलग आज मैं तड़के में उठा, नित्यक्रम से निवृत्त हुआ। आज के लिए रखा खादी का सफेद कुरता, सफेद धोती और सफेद किरमिजी जूता पहनकर अपनी आरामकुरसी पर लेट गया। दिल डूबा जा रहा था।"(1) लेखक यही सोच रहा था कि थोड़ी चाय का बंदोबस्त कैसे हो। उन दिनों वे पुलिस के निरीक्षण में थे। सी.आई.डी उनका पीछा करते थे। विषम परिस्थितियों में जीवन बिताने वाले एक आम आदमी के एक दिन के जीवन को इस कहानी में रूपायित किया गया है।

कारावास के दिनों की स्मृतियाँ बशीर की कई कहानियों में हैं। 'टाइगर' इसी प्रकार की एक कहानी है। (2) टाइगर एक कुत्ते का नाम है और उसके इर्द-गिर्द कहानी घूमती है। कहानी इसप्रकार शुरू होती है – "टाइगर नसीब वाला कुत्ता है।" कहानी की इतिश्री भी इसी वाक्य से होती है। कहानी का परिवेश थाना और पुलिस लॉकप है। लॉकप और वहाँ रहने वाले कैदियों की तस्वीर यों खींची गई है – "रोशनी और हवा उधर नहीं घुसती है। मल मूत्र की बदबू उधर फैली है। खटमल काट रहे हैं। इन सबको सहकर चिथड़ों से वे तन को ढँके हुए हैं। दाढ़ी और मूँछ बड़ी हो गई हैं। एकदम पीले पड़े कंकाल हैं।" जेल के परिवेश को देश के परिवेश से मिलाकर कहानी के आयाम को विस्तृत कर दिया गया है। कैदी भूखे रहते थे। लेकिन लाड़-प्यार में पलने वाला कुत्ता हृष्ट-पुष्ट था। स्वतंत्रता-सेनानियों को जेल में कई प्रकार की कठिन यातनाओं और पीड़ाओं का शिकार होना पड़ा था। वे नारकीय जीवन बिता रहे थे। लेकिन अपने लक्ष्य में अडिग थे। कैदियों को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता था। लेकिन टाइगर को खाने की कमी नहीं थी। इन्सपेक्टर का जूठन भी एक कैदी के भोजन से बेहतर था। थाने की सभी आदमी रिश्वतखोर थे और वे भ्रष्टाचार में डूबे हुए थे। किसी मुकदमे में फँस गया तो उससे छुटकारा संभव नहीं था। हत्यारा, चोर, राजनीतिक कार्यकर्ता ऐसा कोई अंतर टाइगर नहीं दिखाता था। लॉकप के पैंतालीस आदमियों को वह कुत्ता एक समान देखता था। अंग्रेज़ों के शोषण और दमन का चित्रण इस कहानी में है। यह एक प्रतीकात्मक कहानी है। टाइगर साम्राज्यवादी शक्ति का प्रतीक है।

राजनैतिक कार्यकर्ता की चुनौतियों और यातनाओं का चित्रण 'माँ' (3)कहानी में है। यह कहानी भारत की गरीबी और गुलामी का आईना है। कथाकार देश की हालत और तमाम गरीबों के जीवन में सुधार चाहता था। लेकिन उन्हें ऐसा कोई यकीन

नहीं था कि आज़ादी से सकारात्मक परिवर्तन होगा और देश की स्थिति सुधर जाएगी। नमक सत्याग्रह में भाग लेने के लिए वे वैक्कम से कोषिक्कोटु गए। यही कहानी का मुख्य बिंदु है। खादी पहनने के कारण वैक्कम अंग्रेज़ी स्कूल के हेड मास्टर की मार खानी पड़ी। एक बार बशीर ने गाँधीजी का स्पर्श किया। वे घर जाकर अपनी माँ से इस घटना के संबन्ध में बड़े अभिमान के साथ बता देते हैं। अपने जीवन की ये सारी घटनाएँ इस कहानी में चित्रित की गई हैं। पुलिस द्वारा गिरफ्तारी किया जाना, जेल की सज़ा आदि का ब्योरा भी है। कहानी का आरंभ इस प्रकार है- "विदूर देश के किसी एक शहर में दुख और क्लेश सहकर जीवन बिताने वाले अपने बेटे को माँ हृदय-वेदना से लिख रही है – बेटा, तुझे एक बार देखना है।" कहानी की माँ केवल कथाकार की अपनी माँ नहीं, देश के लिए घर छोड़ने वाले और लड़ाई में भाग लेने वाले हज़ारों देशप्रेमियों की माँ ही नहीं, बल्कि मातृभूमि भी है। अपनी माँ का निस्वार्थ स्नेह, संतानों के प्रति माँ के मन में होने वाले प्यार-दुलार का सार्वलौकिक भाव, अपनी मातृभूमि के प्रति अटूट प्रेम- ये तीनों कहानी में ताने-बाने के समान एक दूसरे से मिले हुए हैं।

'एक कैदी का चित्र' कहानी में कॉन्वेंट में पढ़ने वाली मरियाम्मा के मन में स्वतंत्रता-सेनानी जोसफ के प्रति होने वाले आकर्षण का वर्णन है। वह जोसफ की माँ से जोसफ के बारे में जानती है। जोसफ एक कैदी है और वह चौथी बार जेल की सज़ा भोग रहा है। घर की दीवार पर उसका एक चित्र टँगा हुआ है। जोसफ की चिट्ठियाँ भी माँ उसे दिखा देती है। उन चिट्ठियों से जेल के यातनापूर्ण जीवन का यथार्थ चित्र मिल जाता है। बाद में मरियाम्मा जोसफ को पत्र लिखती है और उन पत्रों से कहानी आगे बढ़ती है। दोनों के बीच एक दृढ़ संबन्ध स्थापित होता है। अंत में जोसफ एक पत्र में मरियाम्मा से अपने को भूल जाने का अनुरोध करता है और बताता है कि घर में अपना जो फोटो है वह मेरा वास्तविक चित्र नहीं है। मेरे अब दो आँखें नहीं हैं, केवल एक ही आँख है। स्वतंत्रता सेनानियों को जो जो यातनाएँ सहनी पड़ती हैं, उनका हृदयस्पर्शी वर्णन इस कहानी में है।

'हथकड़ी' बशीर के जेल-जीवन से जुड़ी और एक कहानी है। छत्तीस कैदियों के समूह में बशीर भी है। कांग्रेस कमेटी सेक्रटरी के साथ उनको हथकड़ी लगाई गई है। थाने से अदालत और अदालत से थाने के बीच की यात्राओं में दोनों अपने-अपने अनुभव परस्पर बाँटते हैं। बशीर को दो साल की कड़ी सज़ा और एक हज़ार रुपये का जुर्माना सुनाया जाता है। बशीर सोचता है कि दो साल की सज़ा और एक हज़ार के जुर्माने के लिए मैं ने कौन-सा अपराध किया। क्या किसी को मार डाला है? 'पुलिसवाले की बेटी' कहानी में जगदीश एक राजनीतिक कार्यकर्ता है। वह पुलिस की पकड़ से बच जाता है। पुलिस वाले की बेटी उसकी मदद करती है। लेकिन आखिर पकड़ा जाता है। जेल छूटकर वापस आने पर वह अपनी माँ से पुलिस वाले की बेटी से शादी करने की इच्छा प्रकट करती है।

'मतिलुकल'(4) (दीवारें) आत्मकथात्मक रचना है। 1942-43 में बशीर को तिरुवनन्तपुरम के सेंट्रल जेल में डाल दिया गया था। यह उन दिनों की कहानी है। जेल में एक ऊँची दीवार है जो पुरुष और स्त्री कैदियों को अलग करती है। बशीर जेल से भाग जाने की योजना बनाता है और अंधेरी बरसाती रात का इंतज़ार कर रहा है। एक दिन वह दीवार की दूसरी तरफ से एक स्त्री की आवाज़ सुनता है। वह समझता है कि उस स्त्री का नाम नारायणी है और उसे चौदह साल की सज़ा मिल गई है। इसके बाद जेल में उसकी ज़िन्दगी पूरी तरह बदल जाती है। नीरस यांत्रिक जीवन खत्म हो जाता है। जीवन उत्साह और आशा से भर जाता है। वह बाहर जाना ही नहीं चाहता। दीवार के आर-पार रहकर वे दोनों बातें करते हैं। वह दीवार के ऊपर आने वाली छड़ी के इंतज़ार में अपना समय बिताता है। यही नारायणी के आने का संकेत है। दोनों अस्पताल में मिलने की योजना बनाते हैं। लेकिन उसी दिन बशीर को जेल से मुक्त कर दिया जाता है। उसे यह कहने का अवसर भी नहीं मिला था कि वह जा रहा है।

संक्षेप में राजनीतिक कार्यकर्ता होने के कारण बशीर कई बार जेल गए और वहाँ के अनुभवों को अपनी रचनाओं में समेटा। उन्होंने गरीबी नज़दीक से

देखी है। उनकी कहानियाँ आम जनता से जुड़ी हुई हैं। उनकी रचनाओं में भूख, गरीबी और जेल जीवन के ब्योरे ज़्यादा मिलते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1)वी.के.रवीन्द्रनाथ(अनुवादक), वैक्कम मुहम्मद बशीर की प्रतिनिधि कहानियाँ, लोकभारती प्रकाशन।

2) बशीर स्वातंत्र्य समर कथकल, डी.सी.बुक्स।

3)डॉ. पी.के.तिलक, कथापठनंगल, मातृभूमि बुक्स।

संदर्भ :

1) 'जन्म दिन' कहानी, 'जन्म दिन' कहानी संकलन, 1945

2) 'रंण्टु श्वान कथकल', जन्मभूमि ऑन लाइन, 2 नवंबर 2013

3) 'अम्मा' कहानी 'ओर्मक्कुरिप्पु' कहानी संकलन, 1946, डी.सी. बुक्स।

4) 'मतिलुकल' प्रकाशन – डी सी बुक्स, 1965; कौमुदी साप्ताहिक, ओणम विशेषांक; 1964

◆ प्रोफसर, हिंदी विभाग,
यूनिवर्सिटी कॉलेज,
तिरुवनन्तपुरम,केरल।
ई.मेल : jayakrishnan304@gmail.com

आंचलिक उपन्यासों में साम्प्रदायिकता

◆ **डॉ.मन्जू कोगियाल**

सारांश- "साम्प्रदायिकता से तात्पर्य उस संकीर्ण मनोवृत्ति से है, जो धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर पूरे समाज तथा राष्ट्र के व्यापक हितों के विरुद्ध व्यक्ति को केवल अपने व्यक्तिगत धर्म के हितों को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें संरक्षण देने की भावना को महत्व देती है। "यह एक ऐसी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें साम्प्रदायिकता को आधार बनाकर राजनीतिक हितों की पूर्ति की जाती है और जिसमें साम्प्रदायिक विचारधारा के विशेष परिणाम के रूप में साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाएँ होती हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में साम्प्रदायिकता तो आधुनिक राजनीति के उद्भव का ही फलन है।" भारतीय इतिहास विभाजन की त्रासदी का इतिहास है, जो तब से अब तक भय का कारण बना हुआ है। विभाजन की इस भयावह स्थिति के कारण उत्पन्न साम्प्रदायिक वातावरण ने मानव-मूल्यों को ही परिवर्तित कर दिया है। हिंदू-मुस्लिम संबंधों, साम्प्रदायिकता तथा विभाजन पर हिंदी साहित्य में पर्याप्त काम हो चुका है, किन्तु इस विषय पर कुछेक लेखकों के साहित्य को रेखांकित किया गया है, जिनमें नागार्जुन, राही मासूम रजा, शैलेश मटियानी, भैरव प्रसाद गुप्त, फणीश्वर नाथ रेणु, रामदरश मिश्र आदि प्रमुख हैं।

बीज शब्द- राही मासूम रजा, भैरव प्रसाद गुप्त, फणीश्वर नाथ रेणु, मैला आंचल, परती परिकथा, आधा गांव, ओंस की बूंद, सतीमैया का चौरा आदि ।

भारतवर्ष अपनी एकता तथा अखण्डता का प्रतीक था। वह युगों-युगों से वर्गभेद तथा वर्ण भेद के महाजाल में उलझा हुआ है, जिसकी स्थिति वर्तमान में भी ज्यों का त्यों बनी हुई है। भारत जैसे हिन्दूवादी राष्ट्र में दलित तथा मुसलमान दोनों को ही भयानक मानसिकता से गुज़रना पड़ता है, राजनीतिक दलों तथा सत्तालोलुप व्यक्तियों ने स्वहित व स्वार्थपरता के कारण इस भेदभाव की आग को और हवा दी है। सत्ताधारी हिन्दू-मुसलमान में फूट डालकर गाँवों की एकता एवं अखण्डता को भंग करना चाहते हैं। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही एक-दूसरे के विरोधी बने हुए हैं, जिस कारण ग्रामीण तथा शहरी जीवन में असंतोष व्याप्त हो गया है। इस्लाम का आगमन सातवीं शताब्दी में हुआ और ये लोग यहीं आकर बस गए। इस

तरह भारतीय संस्कृति इस्लामिक संस्कृति के सम्पर्क में आती चली गयीं। सन् 1600 में ईस्ट इण्डिया कंपनी की स्थापना हुई।1857 ई. तक अंग्रेज़ भारत में अपना अधिकार स्थापित कर चुके थे। सन् 1857 की क्रांति में ब्रिट्रिश सेना के विरुद्ध संघर्ष का विरोध हिन्दू तथा मुसलमान ने मिलकर झेला था और दोनों धर्म के लोग एक दूसरे पर प्राण निछावर करते थे। हिन्दू-मुस्लिम मित्रता के ऐसे अनेकों उदाहरण इतिहास में अंकित हैं। दोनों में आपसी सद्भाव तथा सौहार्द विद्यमान थे। हिंदू ईद मनाते थे, तो मुसलमान होली के रंगों में रंगते थे। किन्तु अंग्रेजों की 'फूट डालो, राज करो' की नीति ने साम्प्रदायिकता रूपी दुर्भावना को जन्म दिया। साम्प्रदायिकता पर प्रकाश डालते हुए मीना शर्मा लिखती हैं कि-''समय-समय पर धर्म के स्वरूप में परिवर्तन आते रहे हैं, किन्तु उसकी मूल भावना नष्ट नहीं हुई, उन परिवर्तित स्वरूपों में जब भी विकार उत्पन्न हुए उनके संस्कार स्वरूप सम्प्रदायों का जन्म हुआ। सम्प्रदाय में दार्शनिक चिन्तन के विभिन्न मार्ग हैं, उनके अनुयायियों की कट्टरता और संकीर्णता ने सम्प्रदायों को विकारग्रस्त कर दिया।''[1]

इस प्रकार साम्प्रदायिकता एक ऐसी समस्या बनी हुई है, जो सदियों से दोस्त थे आज दुश्मन बने हुए हैं। यह दुर्भावना शहरों से लेकर ग्राम्य जीवन को भी अपनी चपेट में ले रही है। साम्प्रदायिकता के दुष्प्रभाव से राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को भी हानी पहुँची है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में उपन्यासकारों ने इस साम्प्रदायिकता रूपी विषवृक्ष के कुपरिणामों पर भी प्रकाश डाला है। -प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में उपन्यासकारों ने इस साम्प्रदायिकता के वीभत्स रूप को भी उजागर किया है। माना कि इस विषबीज' को ब्रिटिश शासन ने बोया था किन्तु इसे पोषण राजनीतिक दलों से मिलता है। उपन्यास मैला आंचल, परती परिकथा, आधा गाँव, ओस की बूंद, सतीमैया का चौरा में यह साम्प्रदायिकता अपने विकराल रूप में प्रस्फुटित हुई है। उपन्यास 'मैला आंचल' में रेणु ने इसी समस्या को चित्रित किया है। हालांकि उपन्यास में कोई भी मुसलमान पात्र नहीं है, फिर भी रेणु ने काली टोपी वाले संयोजक के कथन से इस भयंकरता को दर्शाया है। काली टोपी वाला नारा लगाते हुए कहता है कि- "इस आर्यावर्त में केवल अर्थात् शुद्ध हिन्दू ही रह सकते हैं।... यवनों ने हमारे आर्यावर्त की संस्कृति, धर्म, कला-कौशल को नष्ट कर दिया है।''[2]

सांप्रदायिकता के दुष्प्रभाव ने मंदिर-मस्जिद को भी विषाक्त कर रखा है, 'परती परिकथा' में रेणु ने इसकी स्पष्ट झाँकी प्रस्तुत की है। परानपुर गाँव के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है कि साम्प्रदायिकता न केवल इस गाँव की, बल्कि समस्त भारतवर्ष की समस्या है। पदलोलुपता के मोह में भेदभाव फैलाया जा रहा है। गद्दार तथा काफिर जैसे हीन शब्दों का प्रयोग कर साम्प्रदायिकता की आग से गाँवों की समदृष्टि व सद्भाव को जलया जा रहा है। रेणु इसी समस्या को इस उपन्यास के माध्यम से बदलना चाहते हैं। मुसलमान टोली का मुखिया समुसुदीन मोर कहता है कि- "कांगरेसी मुस्लमां मल्कार हैं, गद्दार हैं काफिरों के चन्द टुकड़ों पर पले..। लेकिन स्वराज्य होते ही रातों-रात सिर्फ परानपुर गांव की मुसलमान टोली में ही नहीं, आस-पास के गाँवों के मुसलमान भी एक ऐसी कानाफूसी ने पाकिस्तान भाग जाने में ही अपना कल्याण समझा।''[3]

आंचलिक उपन्यासों में साम्प्रदायिकता

भारत में इस्लाम का आगमन सातवीं-आठवीं शताब्दी में हुआ। यहाँ की अपार संपदा को देखकर ये लोग यहीं आकर बस गए। इस तरह भारतीय संस्कृति, इस्लामिक संस्कृति के सम्पर्क में आती चली गयी। सन् 1600 में ईस्ट इण्डिया कंपनी की स्थापना हुई। सन्1857 तक अंग्रेज़ों का विरोध हिन्दू-मुसलमान दोनों ने मिलकर किया था। दोनों धर्म के लोग एक-दूसरे पर प्राण निछावर करते थे।

दोनों में आपसी प्रेम तथा सद्भाव विद्यमान था। हिंदू ईद मनाते तो मुसलमान होली के रंगों में रंगते थे। परन्तु अंग्रेज़ों की फूट-डालो, राज करो की नीति ने साम्प्रदायिकता को जन्म दिया। साम्प्रदायिकता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. मीना शर्मा लिखती हैं कि- समय-समय पर धर्म के स्वरूप में परिवर्तन आते रहे हैं, किन्तु उसकी मूल भावना नष्ट नहीं हुई। उन परिवर्तित स्वरूपों में जब भी विकार उत्पन्न हुए उनके संस्कार स्वरूप सम्प्रदायों का जन्म हुआ। सम्प्रदाय में दार्शनिक चिन्तन के विभिन्न मार्ग हैं। उनके अनुयायियों की कट्टरता और संकीर्णता ने सम्प्रदायों को विकारग्रस्त कर दिया।''[4] साम्प्रदायिकता एक ऐसी समस्या बनी हुई है, जिसके चलते सदियों से एक-दूसरे पर प्राणपण से मर मिटने वाले दोस्त दुश्मन बने हुए हैं। यह भावना शहरी जीवन के साथ ही ग्राम्य जीवन को भी अपनी चपेट में ले रही है। साम्प्रदायिकता के दुष्प्रभाव से राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को भी हानि पहुँची है। आंचलिक उपन्यासों में इस साम्प्रदायिकता रूपी विषवृक्ष के कुपरिणामों को प्रस्तुत कर जनमानस को सावधान किया है।

साम्प्रदायिकता का वीभत्स रूप बढ़ता जा रहा है, जिसका कुरूप मंदिर-मस्जिद को भी विषाक्त कर रहा है। भारतीय ग्राम्य जीवन में साम्प्रदायिकता सत्ता प्राप्त की जा रही है। अपना मार्ग प्रशस्त करने के लिए नेता लोग भेदभाव को अपना मार्ग बना रहे हैं।

अक्सर हम देखते हैं कि साम्प्रदायिकता किस सीमा तक जनसामान्य को प्रभावित करती है, यह 'सती मैया का चौरा' में भैरव प्रसाद गुप्त ने प्रमाणित किया है। प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु भी दो अलग सम्प्रदायों में पले किशोर युवकों (मन्ने, मुन्नी) पर केन्द्रित है। सती मैया के चौरे के निर्माण को लेकर जो संघर्ष उठ खड़ा होता है, वह लोक-जीवन तथा संस्कृति के प्रतीक चिह्नों को नष्ट करता है। धर्म के नाम पर दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे के लहू के प्यासे हो जाते हैं। यह सब देखकर मन्ने कहता है कि "किसी दिन खबर आती है कि फैंला गाँव से हिन्दुओं का गिरोह मसुलमानों को काटता चला आ रहा है... किसी दिन खबर आती है कि फलाँ गाँव से...।[5] तब साम्प्रदायिकता के निवारण पर मुन्नी मन्ने से कहता है कि "साम्प्रदायिकता का इलाज केवल वर्ग-चेतना है! उपदेश नहीं, सुधार नहीं, धर्मों का समन्वय नहीं।"[6] इस प्रकार उपन्यास में सती मैया के चौरे को लेकर झगड़ा ज्यों-ज्यों बढ़ता है, साम्प्रादयिकता उतनी ही विकरालता लिए उभरती है।"

उपन्यास 'आधा गाँव' में तो साम्प्रदायिकता बृहद रूप में सामने आयी है। इस उपन्यास में राही मासूम रजा ने गंगौली के जनमानस के रूप में समस्त भारत वर्ष को प्रतिबिम्बित किया है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव के साथ ही शिया-सुन्नी मुस्लमानों का आपसी मन-मुटाव भी सामने आया है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही एक दूसरे को श्रेष्ठ तथा निम्न मानते हैं। भारतीय समाज में बढ़ते वर्ग-भेद, क्षेत्रवाद तथा जातीयता को देखते हुए इस भेदभावपूर्ण व्यवहार को लेखक ने प्रस्तुत किया है। 'आधा गाँव' में लेखक का यह प्रयास रहा है कि इसे वे साम्प्रदायिकता विरोधी उपन्यास सिद्ध कर सकें। लेखक दोनों में (हिन्दू-मुसलमान) समादर दिखाना चाहते हैं, लेकिन उपन्यास का एक पात्र इसका प्रतिकार करता है। साम्प्रदायिकता को लेकर अब्बास कहता है कि "एक मरतबा पाकिस्तान बन गया तो मुसलमान ऐश करेंगे..ऐश। वह जोश में आ जाता है, और खान अब्दुल गफ्फार खाँ को बगैरह को बुरा भला कहने लगता...ये लोग तो मुसलमानों को हिंदुओं के हाथ बैचने पर तुले हुए हैं..."[7] हिंदूओं के प्रति द्वेषपूर्ण भावना व्यक्त करते हुए कबीर चा हिन्दू पार्टियों पर भी संदेहात्मक दृष्टि रखते हैं। कांग्रेस पार्टी के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए वह कहता है कि- "अरे, मीर साहब! यह कांग्रेस हिंदुओं की पार्टी है! चूँकि मुसलमान ज़मींदार ज़्यादा हैं, इसलिए ज़मींदारी ज़रूर खतम करेगी। त देहातन में मुसलमान के घर

हैं? दाल में नमक की तरह त हैं।"[8] साम्प्रदायिकता के निर्माण में आर्थिक कारणों ने भी अहम भूमिका निभाई है। गंगौली के ज़्यादातर लोग ज़मींदारी से संबंध रखते थे। उन्हें यह डर सताने लगता है कि हिंदू बहुसंख्यक वाले भारत में कांग्रेस की सरकार बनेगी तो उनकी ज़मींदारी चली जाएगी। काली शेरवानी पहने आये दोनों युवक लीग तथा जिन्ना की राजनीति से मुसलमानों को भ्रमित कर साम्प्रदायिक द्वेष फैलाते हुए कहते हैं कि-"पाकिस्तान बना तो ये आठ करोड़ मुसलमान यहाँ अछूत बनकर रखे जाएँगे।"[9] राही का उपन्यास 'ओस की बूँद' सिर्फ एक कहानी नहीं बल्कि वह बदलते समय और राजनीति का जीवंत प्रमाण है, कि किस प्रकार भारतीय समाज समय के साथ अपने हितों के लिए संबंधों को भी बदलता है। यह उपन्यास हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का बेपर्द और बेबाक यर्थाथ को प्रस्तुत करता है। कमेटी के प्रेसिडेंट हयातुल्ला अंसारी ने जवाब दिया कि-" आप लोग भी कमाल करते हैं। कांग्रेस सरकार को चुतिया बनाने का यही मौका है। बलवों में इतने मुसलमान मारे जा रहे हैं कि बलवों के बाद सरकार मुसलमानों को फुसलाना शुरू करेगी।"[10]

निष्कर्ष- इस प्रकार भारतीय सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण घटक साम्प्रदायिकता भी है। सदियों से यह भाव मानव को मानव से पृथक करता आया है, जो वर्तमान में भी प्रभावी है। समाज में विभिन्न सम्प्रदायों के उदय ने जहाँ आध्यात्मिकता की भावना को बल प्रदान किया, वहीं समाज में कट्टरतावादी भावनाओं को भी जन्म दिया। हिन्दू-मुस्लिम कभी एक हुआ करते थे, किन्तु ब्रिटिश हुकूमत ने ऐसा जाल बुना जिसमें दोनों फँसते चले गये। साम्प्रदायिक तत्वों ने जहाँ राष्ट्र को आतंकित किया है, वहीं ग्रामीण (देहाती) परिवेश भी इस भय से अछूता नहीं रहा। समाज का जीवन बद से बदत्तर होता जा रहा है। साम्प्रदायिकता एक भीषण समस्या का रूप लेती जा रही है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. मीना शर्मा, नागार्जुन का उपन्यास साहित्य, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2013, पृ.- 97
2.रेणु फणीश्वर नाथ, मेला आंचल, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2009, पृ. - 135
3.रेणु फणीश्वर नाथ, परती परिकथा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2009, पृ.- 29
4. डॉ. मीना शर्मा, नागार्जुन का उपन्यास साहित्य, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2013, पृ.- 97
5. गुप्त भैरव प्रसाद, सती मैया का चौरा, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2013, पृ.सं.- 355
6. वही, 2013, पृ.सं.- 51
7. रजा राही मासूम, आधा गांव, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2015, पृ.सं.- 58
8.वही, पृ.सं.- 58
9.वही, पृ.सं.- 58
10. रजा राही मासूम, ओस की बूंद, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2004 पृ.सं.- 58

◆राजकीय महाविद्यालय,
नैनबाग,
टिहरीगढ़वाल,
उत्तराखण्ड।

यज्ञ विज्ञान द्वारा समग्र स्वास्थ्य

◆ डॉ.मनन कुमार अग्रवाल, ◆◆ *रघुवीर पटेल*

सारांश- 'यज्ञ को भारतीय संस्कृति का मूल माना गया है। प्राचीनकाल से ही आत्मसाक्षात्कार से लेकर स्वर्ग-सुख, बंधन-मुक्ति, मनःशद्धि, पाप-प्रायश्चित, आत्मबल, ऋद्धि-सिद्धि आदि के केंद्र यज्ञ ही थे। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवं भौतिक लाभ प्राप्त होते हैं।[1] यज्ञ के द्वारा न केवल वातावरण परिष्कृत होता है वरन् इसके चिकित्सीय प्रभाव भी होते हैं। वेद मंत्रों के साथ शास्त्रोक्त हविर्द्रव्यों के द्वारा पवित्र भावना के साथ जब याजक द्वारा यज्ञ किया जाता है, तो उस दिव्य वातावरण में बैठने मात्र से रोगी नीरोग हो सकता है।

मानवीय काया स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण से विनिर्मित है। चिकित्सक विभिन्न औषधियों से केवल स्थूल शरीर की चिकित्सा करता है। परन्तु यज्ञ की पहुँच स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर तक है जिससे तीनों शरीर रोग मुक्त होते हैं। यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह लोक कल्याणार्थ किया जाने वाला श्रेष्ठतम कार्य है।

बीज शब्द - यज्ञ ,विज्ञान,समग्र, स्वास्थ्य, शरीर, मानस, पर्यावरण, देवपूजा, दान,संगतिकरण।

यज्ञ का अर्थ- 'यज्ञ' शब्द 'यज्' धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षों नङ्**[2] सूत्रस्थ 'न' प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। यज्ञ शब्द का सर्वमान्य धातुज अर्थ है- देव-पूजा, संगतिकरण और दान ।

यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु। [3]

देवपूजा

आचार्य यास्क ने अपने निरुक्त शास्त्र में 'देव' शब्द का निर्वचन करते हुए कहा है-

'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा'[4]

जो ओरों' को दान देते है, प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करते है तथा प्रकाशमय लोक में अवस्थित रहते हैं, उन्हें हम देव कहते है और उन्हीं की पूजा करना देवपूजा कहलाता है।

संगतिकरण

यजनं धर्मदेशजातिमर्यादारक्षायै
महापुरूषाणामेकीकरणं यज्ञः

श्रेष्ठ पुरूषों को धर्म, देश, जाति की मर्यादा की रक्षा केलिए संगठित एवं एकत्रित करना यज्ञ है।

दान

यजनं यथाशक्ति देशकाल पात्रादि विचार पुरस्सर द्रव्यादि त्यागः ।

देश, काल तथा पात्र का विचार करके सदुद्देश्य के लिए जो धन दिया जाता है उसे यज्ञ कहते हैं। 'मनुस्मृति' में कहा भी गया है कि

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ।।[5]

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। 'श्रीमद्भगवतगीता' में भी कहा गया है कि यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।[6]

यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं हैं, बल्कि वे तो अवश्य कर्त्तव्य हैं, क्योंकि यज्ञ, दान और तप-ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान पुरूषों को पवित्र करने वाले हैं।

यज्ञ का महत्व

वेदों में अधिकांश यज्ञ की प्रशंसा और प्रार्थना का वर्णन मिलता है। इसमें यज्ञ में सन्निहित शक्तियों और लाभों का वर्णन है।

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हि सीः
निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ।[7]

अर्थ-हे यज्ञ ! तू निश्चय से कल्याणकारी है। स्वयम्भू परमेश्वर तेरे पिता हैं। तेरे लिए नमस्कार है। तू हमारी रक्षा कर। दीर्घायु, उत्तम अन्न, प्रजनन शक्ति, ऐश्वर्य-समृद्धि, श्रेष्ठ सन्तति एवं मंगलोन्मुखी बल-पराक्रम के

लिए हम श्रद्धा-विश्वासपूर्वक तेरा सेवन करते हैं।

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टि वर्द्धनः
अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआ यच्छस्व ।[8]

अर्थ-यह यज्ञाग्नि वृष्टि कराने वाली,धन देने वाली तथा पुष्टि और शक्ति को बढ़ाने वाली है। हे पुरीष्य अग्नि! तुम हमारे सब ओर बल और यश का विस्तार करो।

यज्ञ विज्ञान

पर्यावरण की दृष्टि से यज्ञ का विशेष महत्त्व है। महर्षि दयानन्द कहते हैं कि

"स चाग्निहोत्रमारभ्याश्वमेधपर्यन्तेषु यज्ञेषु सुगन्धिमिष्ट रोगनाशक गुणैर्युक्तस्य सम्यक् संस्कारेण शोधितस्य द्रव्यस्य वायुवृष्टि जलशुद्धिकरणार्थमग्नौ होमः क्रियते, स तद्वारा सर्वजगतः सुखकार्येव भवति ।। [9]

यह कर्मकाण्ड चार प्रकार के द्रव्यों से किया जाता है- सुगन्धयुक्त, मिष्टगुणयुक्त, पुष्टिकारकगुणयुक्त तथा रोगनाशकगुणयुक्त। इन चारों द्रव्यों को शुद्ध-संस्कारित कर जब इनका अग्नि में होम किया जाता है, तब उससे सम्पूर्ण जगत् को सुख मिलता है। वे आगे कहते हैं

"तथैव यज्ञाद्यो वाष्पो जायते स वायुं वृष्टिजलं च निर्दोषं कृत्वा सर्वजगते सुखायैव भवति।। "[10]

इस यज्ञ से जो वाष्प उठता है, वह वायु और वृष्टिजल को निर्दोष और सुगन्धित करता हुआ जगत् के लिए सुखदायक होता है।

'यज्ञाग्नि की पाँच शिक्षाएँ बताई गई हैं-

(1) सदा गरम अर्थात् सकिय रहना
(2) ज्योतित अर्थात् अनुकरणीय बनकर रहना
(3) सम्पर्क में आने वाले को अपना जैसा बना लेना
(4) उपलब्धियों का संग्रह न करके वितरित करते रहना
(5) लौ ऊँची रखना अर्थात् चिन्तन और स्वाभिमान को नीचे न गिरने देना।

इन्हीं आदर्शों को पञ्चशील कहा गया है जो विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रयोजनों के लिये विभिन्न प्रकार से प्रयुक्त होते हैं।'[11]

यज्ञ का प्रभाव:-

पर्यावरण

आदिकाल में आरोग्य वृद्धि और रोग निवृत्ति के लिये यज्ञ होते थे उनको भैषज यज्ञ कहते थे। भैषज के संबंध में अनेक सूत्र संकल्प शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं।

अग्निकृणोतु भैषजम् [12]

अर्थात् यज्ञाग्नि औषधि का काम भी करती है। इन भैषज यज्ञों का ब्रह्मा कोई आरोग्य शास्त्र का मर्मज्ञ विद्वान होता था, जो सूक्ष्म वैज्ञानिक परीक्षण द्वारा यह जान लेता था कि इस क्षेत्र के वायुमण्डल में क्या विकार बढ़ जाने से कौन-सा रोग फैला हुआ है और उसके निवारण के लिये किन औषधियों को हवन करने के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए। 'व्यक्तिगत रोगों के लिए भी ऐसे हवनों का आयोजन किया जाता था। रोगी के शरीर में कौन-सी व्याधि बढ़ी हुई है, कौन से तत्व घट-बढ़ गये हैं उनकी पूर्ति करके एवं शरीरगत धातुओं का संतुलन ठीक करने के लिए किन औषधियों की आवश्यकता है उसका निर्णय करता था। वन औषधियों की सामग्री बनाकर, उसी प्रकृति के वेद मन्त्रों से आहुतियाँ दिलाकर, हवन कराया जाता था। वैसा ही पुरोडास एवं यज्ञावशिष्ट रोगी के लिए तैयार किया जाता था। रोगी यज्ञ-धूम्र के वातावरण में रहता था और उसी वायु से सुवासित जल वायु एवं आहार ग्रहण करता था। तदनुसार वह रोगों से छुटकारा पाता था।[13] ऐसे भैषज यज्ञों के अनेक वर्णन हमें वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

मानस

'यज्ञ' मानव जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन करता है। यज्ञ से उसका सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास होता है। 'यजुर्वेद' में कहा गया है कि

'प्राणाश्च मेऽपानश्च मेऽव्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मे
आधीतं च मे वाक् च
मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे
यज्ञेन कल्पताम् ।।[14]

मेरा प्राण, मेरा अपान, मेरा व्यान, मेरे अन्य प्राण, मेरा चित्त, मेरे विचार, मेरी वाणी, मेरा मन, मेरा नेत्र, मेरा कान, मेरी दक्षता और मेरा बल यज्ञ से सम्पन्न हों- यज्ञीय ऊर्जा से युक्त होकर अधिक प्रखर व

प्रभावी हों।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोतं यज्ञेन कल्पतां
वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पताम् । ।[15]

अर्थात्-यज्ञ से आयु, यज्ञ से प्राण, यज्ञ से दर्शन-शक्ति, यज्ञ से श्रवण-शक्ति, यज्ञ से वाक् शक्ति, यज्ञ से मन तथा यज्ञ से आत्मा बलवान् समर्थ व प्रखर बने।

शरीर

यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। जब हम यज्ञाग्नि में घृत, अन्न, औषधियों आदि की आहुति देते हैं तब उनकी रोगनिवारक गन्ध वायुमण्डल में फैलती है। उस वायु को श्वास द्वारा अपने फेफड़ो में भरते है। वहाँ पर उस वायु का रक्त से सीधा सम्पर्क होता है। वह वायु अपने विद्यमान रोग निवारक परमाणुओं को रक्त में पहुँचा देती है। इसी प्रकिया को 'वेद' में निम्नवत् दर्शाया गया है-

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातुं यद्रपः ।[16]

अर्थात् ये श्वास-निःश्वास रूपी दो वायु चलती हैं, एक बाहर के वायुमण्डल से फेफड़ों के रक्तसमुद्र तक और दूसरी फेफड़ों से बाहर के वायुमण्डल तक। इनमें से पहली, रोगी को रोगनिवारक बल प्राप्त कराये; दूसरी, रक्त में जो दोष हैं उसे अपने साथ बाहर ले जाये।

निष्कर्ष

'यज्ञोऽयं सर्वकामधुक्' जीवन जीने की एक श्रेष्ठतम विज्ञानसम्मत पद्धति है। महर्षि दयानन्द के अनुसार 'जब तक इस होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था।'इसलिए जिससे जितना बन सके उतना प्रयत्न, और धन का विद्या की वृद्धि में व्यय किया करें। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही देश सौभाग्यवान् होता है। यज्ञ एक प्रकार का कर है। देवसत्ताओं के प्रति इसे न देने पर जैसे राज्य प्रशासन जन समुदाय को दण्डित करता है उसी प्रकार विभीषिकाएँ भिन्न-भिन्न रूपों में आकर सारी जगती पर अपना प्रकोप मचा देती हैं। दैवी प्रकोपों से बचने का वैज्ञानिक आधार है यज्ञ । यज्ञ मात्र समस्त कामनाओं की पूर्ति का ही मार्ग नहीं है। अतः राष्ट्रकल्याण तथा पर्यावरण के परिष्कार के लिये यज्ञ अत्यन्त आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. ब्रह्मवर्चस (2012): यज्ञ चिकित्सा, हरिद्वार- श्रीवेद माता गायत्री ट्रस्ट पृ. 15
2. पाणिनीय अष्टध्यायी 3/3/90
3. पाणिनीय धातुपाठ, भ्वादिगण।
4. निरुक्त 7/4/15
5. मनुस्मृति 4/233
6. श्रीमद्भगवतगीता 18/5
7. यजुर्वेद 3/63
8. यजुर्वेद 3/40
9. सरस्वती, महर्षि दयानन्द (2011): ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली- विजय कुमार गोविन्द राम हासानन्द पृ.59
10. सरस्वती, महर्षि दयानन्द (2011): ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली- विजय कुमार गोविन्द राम हासानन्द पृ. 61
11. ब्रह्मवर्चस (1998): यज्ञः एक समग्र उपचार प्रक्रिया, प. श्रीराम शर्मा आचार्य विरचित वांगमय 26, मथुरा- अखण्ड ज्योति संस्थान पृ. 2.1
12. अथर्ववेद 6/106/3
13. ब्रह्मवर्चस (1998): यज्ञः एक समग्र उपचार प्रकिया, प. श्रीराम शर्मा आचार्य विरचित वांगमय 26, मथुरा- अखण्ड ज्योति संस्थान। पृ. 1.13
14. यजुर्वेद 18/2
15. यजुर्वेद 18/29
16. ऋग्वेद 10/137/2

◆सहायक प्राध्यापक, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, गुरुवायुर परिसर (केरल)।
◆◆सहायक प्राध्यापक, महर्षि पाणिनिसंस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र)।

'एक सच्ची झूठी गाथा' में व्यक्त जीवन-यथार्थ

◆ डॉ.लक्ष्मी एस एस

शोधसार - सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने मानव समाज को बिल्कुल बदलकर रख दिया है। परिवार, पति-पत्नी के साथ सम्बन्ध, भाई-बहन, माँ-बाप से संतान के सम्बन्ध, पड़ोसी से सम्बन्ध जैसे हर सम्बन्ध और विशेष रूप से स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की संरचना भी बदल चुकी है। गाथा और प्रमित का सम्बन्ध इक्कीसवीं सदी में स्त्री-पुरुष के बीच बने रहे रिश्तों का बेहतरीन लक्षण प्रस्तुत करता है। इसका आधार बहुत ही क्षणिक हो सकता है, बिल्कुल नेटवर्क की तरह। 'एक सच्ची झूठी गाथा' नामक उपन्यास अनिश्चय, स्वप्न, कल्पनाशीलता, विचारों की आहट और यथार्थ के बीच झूलता है। यह सच्चे और झूठे विचारों के बीच का संवाद भी है।

बीज शब्द : ई-मेल शैली, इंटरनेट, वैचारिकता, अनिश्चय, संवेदना, क्रान्तिकारी, आत्मालाप।

समकालीन हिंदी महिला कथाकारों में अलका सरावगी का नाम उच्च श्रेणी के कथाकारों में आता है। उन्होंने अपने कथासाहित्य के माध्यम से कलकत्ता के मारवाड़ी परिवारों की विसंगतियों का पर्दाफाश किया है। कलकत्ता के विभिन्न समुदायों के सामाजिक जीवन के विभिन्न पहुलुओं को भी उकेरा गया है। अपने प्रथम उपन्यास (कलिकथा : वया बाइपास) में ही अलका जी को साहित्य अकादमी पुरस्कार (2001) मिला था। वर्तमान समय के तमाम जीवन-संदर्भों को उद्घाटित करने में आपकी रचनाएँ सफल हुई हैं। अलकाजी ने अभी तक छह उपन्यास लिखे हैं, जिनकी विषयवस्तु और शिल्प एक दूसरे से बिल्कुल अलग अलग हैं।

कलिकथा : वाया बाइपास (सन् 1998)

शेष कादंबरी (सन् 2001)

कोई बात नहीं (सन् 2004)

एक ब्रेक के बाद (सन् 2008)

जानकीदास तेजपाल मैनशन (सन् 2015)

एक सच्ची झूठी गाथा' (सन् 2018)

'एक सच्ची झूठी गाथा' में दो पात्रों के आपसी वार्तालाप के माध्यम से विभिन्न वैचारिकता को दर्शाया गया है। इसकी प्रमुख पात्र गाथा एक लेखिका है, जो अपनी नयी किताब की सूचना ई-मेल के ज़रिए सैकड़ों लोगों को भेज देती है। किताब का कवर, सार-संक्षेप और प्राप्त करने का जरिया आदि उस ई-मेल में स्पष्ट किये गये थे। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में एक मेल गाथा को मिलता है, "मैडम आपकी जानकारी के लिए मैं सिर्फ अंग्रेज़ी, किताबें पढ़ पाता हूँ। इस तरह बेवजह आप लोगों के इनबॉक्स' में कचरा डालें, यह क्या उचित है।"[1]

यहीं से गाथा का परिचय प्रमित सान्याल से होता है। इंटरनेट पर प्रमित से इस बहस पर गाथा भरोसा कर लेती है और एक दिन उससे मिलने के लिए कोलकत्ता से बागडोगरा एयरपोर्ट पहुँचती है। अंत में बिना मिले वह अपने घर लौट आती है। यह उपन्यास तीन भागों में विभाजित है। पहले में गाथा, का इंतज़ार, उसके अपने निर्णय का संशय और फिर लौट जाने का फैसला है। दूसरे भाग में प्रमित का अपराधी मुख एवं बहुरूपिया व्यक्तित्व दर्शाये गये हैं। तीसरा भाग गाथा के वापस लौटकर सब कुछ सामान्य कर लेने की कोशिश है।

प्रमित ई-मेल के द्वारा यह स्पष्ट कर देता है कि उसे बन्दूक चलाने का ट्रेनिंग मिला हुआ है और उसके इरादे क्या हैं। प्रमित एक नक्सल है और बहुत पढ़ा-लिखा व्यक्ति है, पर उस का कहना है कि वह कोई राष्ट्रवादी नहीं है। राष्ट्रवाद ने केवल युद्ध को जन्म दिया है, दूसरे देशों को शत्रु मानना सिखाया है। गाथा प्रमित को समझाती है कि किसी के कष्ट को समझने के लिए हमें उसी का जीवन जीना ज़रूरी है। " तुम्हारी बातें हमेशा तुम्हारे और दूसरे लोगों के

बीच, जिन्होंने तुम्हारे जैसे कष्ट नहीं पाए हैं एक दीवार खड़ी कर देती हैं।"[2] प्रमित को जानने के बाद गाथा प्रमित से अपने ई-मेल सम्बन्ध विनष्ट करने के लिए उसकी सारी ईमेल डिलिट कर हटा दी, ताकि वह फिर कभी उन्हें पढ़ने का लालच न कर बैठे।

एक साल के बाद गाथा के मन में प्रमित से की गयी बातचीत की यादें उमड़ आती हैं और वह उसके हर नज़रिए को झकझोर देती है। "मुझे भले तुम्हारी बातें बुरी लगें, पर यह सच है कि तुमने मेरा खुद को और दुनिया को देखने का नज़रिया किसी हद तक उलट-पलट कर दिया है। हो सकता है कि तुम मेरी किसी किताब के ऐसे पात्र हो, जिससे मैं कभी नहीं मिल पाती अगर तुमसे परिचय न होता। कम से कम तुम मेरे लिए तो एक अमर पात्र हो।"[3]

कुछ दिनों के अन्तराल में गाथा को प्रमित की शादी का कार्ड मेल से प्राप्त होता है। बातचीत का सिलसिला फिर से शुरू होता है। यहाँ कुछ बदले हुए प्रमित को देखता है। प्रमित का कहना है कि यह परिवर्तन गाथा की वजह से है। गाथा प्रमित और दीपशिखा की शादी की शुभकामनाएँ भी भेजती है। शादी के पिछले दिन रात को गाथा और प्रमित में बातचीत हुई। प्रमित से कहा गया कि "सच पूछो तो मुझे यकीन ही नहीं हो रहा। आज मेरे ससुर आए थे। मुझे रेशमी धोती, कुर्ता और दुपट्टा दे गए जो मुझे कल पहनना है।"[4] यह सुनकर गाथा राहत की साँस लेती है कि सब कुछ ठीक है। शादी के दिन में गाथा के दिमाग में प्रमित की शादी चलती रहती है। रात के बारह बजे प्रमित ने उसे मेल भेजा है। गाथा मेरी शादी नहीं हुई। मैं शादी करने नहीं गया। उन लोगों ने ऐन सुबह सुबह फोन करके जाने मुझसे क्या-क्या जानना चाहा। वैसे मुझे मालूम था कि यही होगा। मैं ने सपने में देख लिया था कि वेदी खाली रहेगी। लोग खा-पीकर हँस-बोलकर चले जाएँगे। वे नहीं चाहते थे कि यह शादी हो। इसलिए वे जश्न के मूड में होंगे। प्रमित ने गाथा को आश्वासन देते हुए यह भी लिखा था कि "तुम मेरे लिए दुखी मत होना। मैं दीपशिखा से प्रेम नहीं करता। मैं खाली उसका उपयोग कर रहा था, अपने स्वार्थ केलिए।"[5]

'एक सच्ची झूठी गाथा' में प्रमुख रूप से दो ही पात्र हैं, जिनमें गाथा एक अधेड़ उम्र की लेखिका है, और प्रमित सान्याल भी एक युवा लेखक है, जिसकी उम्र गाथा की उम्र की आधी होगी।

गाथा की दुष्टि में 'झूठ' उतना बड़ा पाप नहीं है, जितना किसी दूसरों को अकारण मारना-पीटना। गाथा की कहानियों के पात्र भी झूठ बोलते हैं। "औरतें झूठ बोलती हैं कि जीवन जैसे चला रहा है, वैसे चलते रहने देने के लिए और दूसरों को दुःख देने से बचने के लिए। ऐसा जीवन और कहानियों में भी संपन्न होता आ रहा है।"[6]

गाथा अपनी सास सीता माँ की प्रिय बहू थी तथा सीता माँ को अपनी बहू पर नाज था। एक बार सीता माँ ने गाथा से कहा था कि "तुमने मेरे दिल की तमन्ना पूरी कर दी। मैं चाहती थी कि मेरे घर एक पढ़ी-लिखी लड़की बहू बनकर आये।"[7] मध्यवर्गीय सुख-सुविधा के अलावा अपने पति, सास-ससुर से मिली कहीं भी आने-जाने की आज़ादी, रुचि के काम करने की आज़ादी सब कुछ गाथा को है। गाथा दो बडे बच्चों की माँ हैं, जिसकी शादी बीस साल की उम्र में हुई थी और इक्कीस साल की उम्र में वह माँ बन गयी थी। अतः गाथा में एक माँ की संवेदना कूट-कूटकर भरी हुई है। इसलिए वह प्रमित से ज़्यादा संवेदना रखती है। गाथा में दूसरों की माँ बनने का बड़ा शौक है। गाथा के बच्चे अक्सर इसी बात पर व्यंग्य करते थे। गाथा के ही शब्दों में "अपने बच्चों की ठीक-ठाक माँ बनना मेरे लिए मुश्किल काम है। सच कहूँ तो मैं माँ बनते-बनते थक गई हूँ।"[8]

जब प्रमित की शादी की तारीख तय कर दी गयी, तब माँ गाथा की संवेदना, जो अपने पुत्र के प्रति एक औरत माँ प्रकट करती है, उससे भी ज़्यादा प्रमित से प्रकट होती है। गाथा प्रमित से पूछती भी है कि क्या तेरी मंगेतर दीपाशिखा तुम्हारे अतीत को जानती है? क्या तुमने अपना सब कुछ उसे बता

दिया है? तब प्रमित का उत्तर सुनकर गाथा का दिल काँपता जाता है " तुम्हारे सिवाय मैंने किसी को कुछ नहीं बताया है। मेरे साथियों से मुझे डर लगने लगा है। वे ज्वालामुखी हैं। कब उखड जाए, मैं नहीं जानता।"[9]

'एक सच्ची झूठी गाथा' का दूसरा प्रमुख पात्र प्रमित सान्याल, एक लेखक होने के साथ ही साथ एक क्रान्तिकारी भी है। प्रमित के पिता बंगाली थे और माँ जर्मन। ये दोनों हमेशा अंग्रेज़ी में बात करते थे, इसीलिए उनके द्वारा अपनी मातृभाषा अंग्रेज़ी बनायी रखी है। समय चलते प्रमित की तीन माताएँ प्रस्तुत हुई हैं और वे हैं जर्मन माँ, बँगाली माँ और आदिवासी माँ। सात साल की उम्र में अपने बेटे को अनाथ कर जाने के पहले पिता ने प्रमित को हर तरह की माँ ला दी थी "वैसे ही जैसे छोटी लड़कियों के पास रशियन, जर्मन, इंडियन, ट्राइबल तरह-तरह की गुड़िया होती हैं।"[10]

प्रमित की शारीरिक संरचना ऐसी है कि उसमें दो संस्कृतियों का संगम दिखाई पड़ता है। "वैसे मैं नस्ल के तौर पर अभिशप्त हूँ। यहाँ पर लोग मुझे विदेशी समझते हैं क्योंकि मेरी चमड़ी का रंग पूरी तरह हिन्दुस्तानी नहीं है, पर वहाँ पहुँचूँगा तब भी अपने काले से बालों के कारण और अलग रंग के कारण वहाँ का नहीं लगूँगा।"[11] इसमें यह व्यक्त हो जाता है कि हर मिश्रित नस्ल के बेटे को दुनिया में अपनी जगह खोजनी पड़ती है। प्रमित कहता भी है कि वह किसी एक देश का नागरिक नहीं बन सकता। यहाँ अलका जी वर्तमान दौर की आइडेंटिटी क्राइसिस की बात कर रहा है। पहचान का यह संकट उपभेक्तावाद और पूँजीवाद की परिणति है।

प्रमित बचपन में यद्यपि अनाथ था, फिर भी उसे उच्च शिक्षा पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जीवन के कठोर रास्तों से चलते हुए उसने अनुभवों का एक बहुत बडा गड्ढा भी अपने मन के अन्दर समेट लिया है। उसका कथन है कि जीवन में कोमा वह जगह होती है, जहाँ रुककर पीछे की तरफ मुड़कर हम अपने बीते हुए को फिर से देखते हैं और अगले ही क्षण सामने की तरफ उचककर दूर देखते हैं। "कौमा में हमारे सारे दुःख, सारी हैरत, सारी आशंकाएँ ओर सारी उम्मीदें रहती हैं।"[12]

प्रमित का एक प्यारा मित्र था कबीरू, जो भी कविता लिखा करता था। वह प्रमित के लिए कुछ भी करने को तैयार था, लेकिन एक क्रान्तिकारी संघर्ष में वह मारा गया था। दोनों में समानताएँ अधिक थीं। दोनों शासन करने वाले मूर्खों से नफरत करते थे। प्रमित और कबीरू एक ओर बन्दूक के साथी हैं, तो दूसरी ओर विशुद्ध साहित्य के। "हम बन्दूकों से कविताएँ लिखते हैं। हम शिकार बन गए हैं, शिकारियों के। इसलिए हम उनका शिकार करते हैं।"[13] इसमें प्रमित सान्याल जैसे व्यक्ति का जीवन प्रस्तुत किया गया है, जिसका जन्म दो नस्लों के संगम से हुआ है, जिन्होंने पूँजीपतियों के शोषण से लोगों को बचाने केलिए क्रान्तिकारी जीवन अपनाया है, अपनी माँ की उम्रवाली एक लेखिका से इंटरनेट के माध्यम से संपर्क स्थापित करके क्रांतिकारी जीवन को छोड़कर आम आदमी की भांति स्वतंत्र जीवन बिताने के लिए शादी करने का संकल्प लिया है और बाद में पूर्व इतिहास के कारण उसकी शादी संपन्न नहीं हो पाती।

प्रमित अन्त में गाथा से कहता है "गाथा मेरा सच क्या है, यह तुम कभी जान नहीं पाओगी। मेरा सच है तो ज़रूर इसी ब्रह्मांड में, पर वह किसी की भी पहुँच के बाहर है। सच पूछो तो कई बार लगता है कि मेरा सच मेरी हथेली की रेखाओं में भी नहीं लिखा। मैं उसे खुद नहीं पढ़ पाता। पीछे देखता हूँ तो सिर्फ धुन्ध है। उसमें मैं अपने सच रोज़ मिटाकर रोज़ नए सच लिखता हूँ।"[14]

आत्मकथात्मक शैली में रचित प्रस्तुत उपन्यास की संपूर्ण कथावस्तु ई-मेल शैली के द्वारा आगे बढ़ती है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका यह भी व्यक्त करना चाहती है कि अगर कोई क्रान्तिकारी अपने बुरे जीवन को छोड़कर यथार्थ

जीवन पर आ भी जाए, तो भी समाज से अंगीकार प्राप्त करना मुश्किल है। इसमें सच एवं झूठ के बीच की टकराहट मिलती है। सच स्वतंत्रता की पहचान है और अस्तित्व के प्रश्नों से जूझता है। झूठ बंधन की आहट है काल्पनिकता से मिलता-जुलता है। इसमें प्रमित झूठ का और गाथा सच का प्रतीक है। यह सच्ची-झूठी गाथा समय से परे है, अपने समाज को देखने की अच्छी कोशिश है। इसमें एक स्त्री और एक पुरुष के बीच संवाद और आत्मालाप ज़रूर है, साथ ही सोच की उलझनें टकराहट ही नहीं, आत्मीयता की आहट भी है।

सन्दर्भ:

1. पृ 11, एक सच्ची झूठी गाथा, अलका सरावगी
2. पृ 110, वही
3. पृ 117, वही
4. पृ 154, वही
5. पृ 155, वही
6. पृ 12, वही
7. पृ 31, वही
8. पृ 20, वही
9. पृ 139, वही
10. पृ 15, वही
11. पृ 23, वही
12. पृ 48, वही
13. पृ 81, वही
14. पृ 155, वही

सहायक ग्रन्थ

1. एक सच्ची झूठी गाथा, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018.
2. अलका सरावगी कृत एक सच्ची झूठी गाथा में वैचारिक टकराव, शारिका एस.टी, विकास प्रकाशन, कानपुर; 2019.
3. अलका सरावगी का कहानी साहित्य, डॉ. शीतला प्रसाद दुबे, डॉ. सत्या सुधीर चौबे; अतुल प्रकाशन, कानपुर, 2013.

◆असिस्टेंट प्रोफेसर

एम जी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण में हिन्दी साहित्य का योगदान (भक्ति साहित्य के विशेष संदर्भ में)

◆ डॉ .गोपकुमार जी

भारतीय ज्ञान परंपरा एक निर्मल, निश्चल, पवित्र निर्धारिणी है जिसमें सहस्रों ऋषि-मुनियों की आस्था, मूल्य, आदर्श, दर्शन, ज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, संस्कार, पद्धतियाँ, कर्म, भक्ति एवं जीवंत भावनाएँ समाहित हैं। यह परंपरा किसी एक तत्व तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक विस्तृत और व्यापक चेतना है, जिसने भारत की प्रत्येक धारा में प्रवाहित ज्ञान को आत्मसात किया है। यह ज्ञान-परंपरा सहस्रों सूर्यों की रश्मियों के समान अनंत प्रकाश वाली है जिसमें ज्ञान की समस्त धाराएँ अपने-अपने स्थान पर तो चमत्कृत होती ही हैं, साथ ही एक दूसरे के साथ संपृक्त होकर द्विगुणित हो उठती हैं। यही प्रकाश बिंदु भारतीय ज्ञान परंपरा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा है क्या? इस जिज्ञासा के मन में उठते ही कल्पना तत्काल वेदों की ओर गमन करती है । वेद भारतीय संस्कृति, ज्ञान और सभ्यता के मूल हैं एवं भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम और सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ भी हैं, जो ब्रह्म, अध्यात्म, विज्ञान, कर्म, धर्म, पर्यावरण, और साहित्य पर विस्तृत चर्चा करते हैं। वेदों में चार प्रमुख संहिताएँ हैं – ऋग्वेद,

सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद, और इन्हीं में से उपनिषदों[1] ने आत्मा के ज्ञान को प्रधानता दी, जिससे भारतीय दर्शन का आधार तैयार हुआ। उन्हीं से समस्त भाषाओं का, ज्ञान के समस्त स्वरूपों का जन्म हुआ। संस्कृत की पुत्री कही जाने वाली हिन्दी उसी ज्ञान को विभिन्न विधाओं के रूप में प्रत्येक जिज्ञासु तक पहुँचाती है। इसी ज्ञान परंपरा का निर्वाह करते हुए हिन्दी साहित्य अपने कर्म-पथ पर अग्रसर होता है।

फिर बात आती है कि क्या भारतीय ज्ञान परंपरा की मूल जड़ें केवल वेदों पर आधारित हैं या अन्य स्रोतों में भी निहित हैं। यह परंपरा वेदों के अतिरिक्त उपनिषदों, ब्राह्मणों और अरण्यकों में भी समाहित है, जिनमें धर्म, संस्कृति, आयुर्वेद, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, खगोलशास्त्र आदि विषयों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके बाद भारतीय ज्ञान परंपरा ने शास्त्रों, सिद्धांतों और दर्शन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य, विशेषकर वैष्णव संप्रदाय के दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान परंपरा के अमूल्य धरोहर हैं। 'महाभारत' के रचनाकार व्यास ने कहा था कि महाभारत में हर वह विषय है, जो पूरी दुनिया में उपस्थित है। 'भगवद् गीता' भी भारतीय ज्ञान परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो जीवन के विविध पहलुओं में मार्गदर्शन प्रदान करती है।

प्राचीन काल में संस्कृत भाषा[2] पर केंद्रित ज्ञान परंपरा तद्युगीन ग्रंथों तक परिसीमित थी, जिनकी जटिलता एवं शास्त्रीय स्वरूप के कारण सामान्य जन की पहुँच उन तक दुष्कर थी। संस्कृत की कठोर व्याकरणिक संरचना तथा गूढ़ तात्विक दृष्टिकोण ने इसे मुख्यतः विद्वानों, आचार्यों और राजाश्रय प्राप्त विदुषियों तक ही सीमित रखा। परिणामस्वरूप, यह परंपरा साहित्यिक प्रवाह की मुख्यधारा से पृथक रहकर केवल विशिष्ट वर्ग तक सीमित रही। आदिकाल में साहित्यिक रचनाएँ प्रायः राजदरबार एवं उच्चवर्गीय समाज तक केंद्रित रहीं, जिससे यह लोकमानस में व्यापक रूप से प्रविष्ट न हो सकी। कालांतर में ज्ञान परंपरा ने अपनी उत्कृष्टता को भक्ति साहित्य में पूर्णतः अभिव्यंजित किया।

भक्तिकालीन साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण विस्तार था, जिसने युगीन चेतना को परिष्कृत कर मानवीय मूल्यों को एक नवीन दृष्टि प्रदान की। इस काल के संत और भक्त कवियों ने भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल तत्वों को लोकभाषा में प्रस्तुत कर समाज में व्यापक परिवर्तन का सूत्रपात किया। उन्होंने भक्ति को केवल धार्मिक आस्था तक सीमित न रखते हुए इसे सामाजिक सुधार और आत्मज्ञान का साधन बनाया। पुस्तकों में संकलित भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध आयामों को जनसामान्य तक पहुँचाने में हिंदी भाषा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह योगदान विशेष रूप से उन रचनाओं के माध्यम से प्रकट हुआ, जिनमें धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और सामाजिक विषयों को सरल एवं सहज भाषा में अभिव्यक्त किया गया। हिंदी साहित्य ने न केवल शास्त्रीय ग्रंथों की गूढ़ अवधारणाओं को लोकभाषा में रूपांतरित किया, बल्कि उन्हें व्यापक जनमानस के लिए बोधगम्य भी बनाया, जिससे भारतीय ज्ञान परंपरा केवल पांडित्य तक सीमित न रहकर समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँच सकी।

इस्लामिक, बौद्ध एवं ईसाई प्रभावों के कारण विलुप्त होती भारतीय धार्मिक परंपरा को भक्तियुगीन रचनाकारों ने न केवल पुनर्जीवित किया, बल्कि उसे जनसामान्य तक प्रभावी रूप से पहुँचाया। इस कार्य में हिंदी भाषा ने अपनी रचनाओं के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दिया। भक्ति साहित्य ने संस्कृत में उपलब्ध जटिल धार्मिक और दार्शनिक सिद्धांतों को जनभाषाओं में अनुवादित कर उन्हें सहज, सुबोध और व्यापक बनाया।हिंदी साहित्य की लोकभाषाएँ जैसे अवधी, ब्रज, बुंदेली, राजस्थानी, मैथिली और भोजपुरी ने भी इस जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका

निभाई। रामचरितमानस, विनयपत्रिका, सूरसागर, प्रेमवाटिका, सतसई, सखियाँ[3] और पदावलियाँ न केवल भक्ति के संवाहक बनीं बल्कि उन्होंने सामाजिक समानता, प्रेम और करुणा का संदेश भी प्रसारित किया।भक्ति साहित्य के प्रभाव से हिंदी भाषा का भी अभूतपूर्व विकास हुआ। संस्कृतनिष्ठता से हटकर यह भाषा आम जनता की बोली बन गई, जिससे यह सामाजिक संवाद, आध्यात्मिक विचारधारा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सशक्त माध्यम बनी।

परिस्थितिवश समाज में व्याप्त मानव-विरोधी विचारधाराओं और रूढ़िगत संरचनाओं को चुनौती देते हुए भक्त कवियों ने भारतीय ज्ञान परंपरा के आधार पर समता, करुणा और आध्यात्मिक चेतना को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। वैदिक ग्रंथों में निहित भक्ति की अवधारणा को आधार बनाकर संतों और भक्त कवियों ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों, भेदभावों और आध्यात्मिक जड़ता को चुनौती दी। ऋग्वेद में स्तुति, यज्ञ और श्रद्धा के रूप में व्यक्त भक्ति-भावना को संत कवियों ने लोकभाषा में सरल और सुलभ बनाया। यजुर्वेद और सामवेद में वर्णित यज्ञ, कर्मकांड और संगीत-प्रधान उपासना को भजन, कीर्तन और नादयोग के रूप में ढालकर भक्तिकाल में आत्मसात किया गया। उपनिषदों के "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" सिद्धांत को निर्गुण भक्ति में विकसित किया गया, जहाँ ईश्वर को निराकार और व्यापक सत्ता के रूप में देखा गया। वेदांत दर्शन के अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत मतों को भक्ति मार्ग में समाहित करते हुए शंकराचार्य ने आत्मज्ञान द्वारा भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत किया, जबकि रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य ने सगुण भक्ति पर बल दिया। इन सभी तत्वों को संरचित कर व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने में हिंदी और उसकी उपभाषाओं ने पुल का कार्य किया।

कबीर के दोहे आत्मज्ञान और जीवन दर्शन की वैज्ञानिकता दर्शाते हैं, जबकि तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में आयुर्वेद, धर्मशास्त्र और योग के सिद्धांत समाहित हैं। सूरदास और मीरा की भक्ति में मनोविज्ञान और भावनात्मक संतुलन के तत्व देखे जा सकते हैं। संत कवियों ने ज्ञान को आस्था तक सीमित न रखकर उसे व्यवहारिक दर्शन का रूप दिया, जिससे समाज के हर वर्ग को आत्मबोध, चिकित्सा, खगोलशास्त्र और आध्यात्मिकता का बोध मिला। भक्ति साहित्य ने भारतीय ज्ञान परंपरा को न केवल संरक्षित किया, बल्कि उसे नई ऊर्जा देकर मुख्यधारा में पुनः स्थापित किया।

सगुण और निर्गुण भक्त कवियों ने सामाजिक बुराइयों पर प्रहार कर भक्ति काव्य को मानवीय साधना की महान अभिव्यक्ति बनायी। यह न केवल सामाजिक चेतना जाग्रत करता है, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा के गहरे स्रोतों की ओर भी मार्गदर्शन करता है। 'रामचरितमानस' (तुलसीदास) ने हिंदी को सशक्त माध्यम बनाया, जबकि 'साखी' (कबीर) आत्मबोध और सामाजिक सुधार का संदेश देती है। 'सूरसागर' (सूरदास) में भक्ति के साथ मनोवैज्ञानिक गहराई, विनयपत्रिका (तुलसीदास) में आध्यात्मिकता की सूक्ष्म अभिव्यक्ति और पदावली (मीरा) में भक्ति का भावनात्मक पक्ष प्रकट होते हैं। इन रचनाओं ने भक्ति आंदोलन को एक व्यापक बौद्धिक आधार प्रदान किया। हिंदी भाषा ने इन विचारों को जन-जन तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी की लोकभाषाओं में रचित इन ग्रंथों ने भारतीय ज्ञान परंपरा को एक नई दिशा प्रदान की और उसे व्यापक स्तर पर प्रचारित किया।

हिंदी साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त भारतीय ज्ञान परंपराएँ सनातन धर्म की विशेषताओं से समृद्ध होकर विश्वभर में अपनी महत्ता सिद्ध करती रही हैं। इन परंपराओं का प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन जीवन मूल्य, पंच महायज्ञ, षोडश संस्कार, तीन ऋण, आयुर्वेद, शिक्षा पद्धति, वैदिक ज्ञान, उपनिषदों में

निहित गृहविद्या, पुराणों में संचित व्यवहारिक ज्ञान, कौशल संपत्ति, अष्टांग योग पद्धति, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की प्रणालियाँ, प्रकृति के प्रति संरक्षण और पोषण की भावना तथा दर्शन शास्त्रों में समाहित आध्यात्मिक ऊर्जा—ये सभी भारतीय ज्ञान परंपरा के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं, जिनका प्रभाव संपूर्ण विश्व में परिलक्षित होता है। इन परंपराओं ने न केवल भारतीय समाज को समृद्ध किया, बल्कि पश्चिमी संस्कृतियों, ज्ञान और अनुसंधान को भी प्रेरित किया है। इसी ज्ञान परंपरा के संवर्धन और प्रचार-प्रसार में हिंदी साहित्य ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भक्तिकाल से आधुनिक काल तक, हिंदी साहित्य ने भारतीय विचारधारा, सांस्कृतिक मूल्यों और आध्यात्मिक चेतना को जनमानस तक पहुँचाने का कार्य किया, जिससे यह केवल एक भाषा न रहकर भारत की बौद्धिक और दार्शनिक विरासत का संवाहक बन गया।

भारतीय ज्ञान परंपरा और मध्यकालीन भक्ति काव्य ने भारतीय संस्कृति को न केवल उच्च मानवीय मूल्यों और आध्यात्मिकता से समृद्ध किया, बल्कि नैतिकता और संयमित आचरण को भी केंद्र में रखा। इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को संतुलित रूप से आत्मसात कर व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना था। ऋग्वेद से आधुनिक युग तक, भारतीय शिक्षा प्रणाली ने विनम्रता, सत्य, अनुशासन और आत्मनिर्भरता जैसे मूल्यों को प्रोत्साहित किया। भारतीय मनीषियों ने ज्ञान का व्यापक प्रसार कर समाज को पशुता से मुक्त कर श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त किया। यह परंपरा धार्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक विचारों से समृद्ध एक बहुमूल्य धरोहर है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है और भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बन गई है। भक्तिकाल के दौरान इस ज्ञान परंपरा का व्यापक प्रसार हुआ, जिससे समाज के सभी वर्ग इससे लाभान्वित हुए। इस परंपरा को आधुनिक युग में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा जैसे साहित्यकारों ने सशक्त किया, जिन्होंने सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विषयों पर लेखन के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा को नए संदर्भों में प्रस्तुत कर समाज में जागरूकता और सुधार की लहर उत्पन्न की। हिंदी साहित्य, अपने विभिन्न काव्यों और गद्य रूपों में, इस ज्ञान परंपरा के संरक्षण और संवर्धन का सशक्त माध्यम बना, जिससे यह परंपरा निरंतर विकसित होती रही और वर्तमान पीढ़ी तक अपनी महत्ता बनाए रख सकी।

आज के डिजिटल युग में हिंदी साहित्य ई-पुस्तकों, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों और डिजिटल लाइब्रेरियों के माध्यम से व्यापक रूप से उपलब्ध हो रहा है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित बनी रहे। यह परंपरा केवल भारत तक सीमित नहीं रही, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी अपना प्रभाव स्थापित कर चुकी है। योग, आयुर्वेद, शाकाहार, प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी चिकित्सा, होम्योपैथी और सिद्ध चिकित्सा जैसी पद्धतियाँ यूरोप और अमेरिका में लोकप्रिय हो रही हैं, जबकि भारत में इन्हें पुनः पहचान दिलाने की आवश्यकता है। हल्दी और नीम जैसी औषधीय जड़ी-बूटियाँ भारतीय चिकित्सा पद्धति का अभिन्न अंग रही हैं, जिन्हें अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी मान्यता प्राप्त हो रही है। इन पारंपरिक चिकित्सा विधाओं के मूल स्वरूप का संरक्षण और संवर्धन भक्तिकाल के दौरान हुआ, जहाँ आध्यात्मिकता के साथ-साथ लोककल्याणकारी चिकित्सा पद्धतियों को भी प्रोत्साहित किया गया।

भारतीय संस्कृति मूलतः 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना पर आधारित है, जो संपूर्ण मानव जाति को एक परिवार के रूप में स्वीकार करती है।भक्तिकाल में यही विचारधारा संत कवियों की रचनाओं का आधार बनी, जहाँ उन्होंने सामाजिक

समरसता, भक्ति, प्रेम और समानता के आदर्शों को स्थापित किया। उनके काव्य ने न केवल आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत किया, बल्कि समाज में व्याप्त भेदभावों और कुरीतियों के विरुद्ध भी प्रभावी संदेश दिया। आधुनिक भारतीयों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने प्राचीन ज्ञान को संरक्षित कर शिक्षा प्रणाली में समाहित करें। भारत एक ऐसा राष्ट्र है, जो विज्ञान, तकनीक और आध्यात्मिकता के समन्वय की अपार क्षमता रखता है। अतः धार्मिक विश्वासों को प्रभावित किए बिना, शिक्षा प्रणाली में प्राचीन भारतीय ज्ञान के मूल्यों को सम्मिलित करना आवश्यक है, जिससे यह परंपरा केवल ऐतिहासिक धरोहर बनकर न रह जाए, बल्कि एक जीवंत और व्यावहारिक दर्शन के रूप में आगे बढ़े।

भारतीय ज्ञान परंपरा ने न केवल देश के भीतर, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी अमिट छाप छोड़ी है। राजनीति, संस्कृति, समाज, विज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में इस परंपरा की उपस्थिति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। उदाहरण के रूप में, पाश्चात्य समाज ने कौटिल्य के राजनीतिक सिद्धांतों से प्रेरणा प्राप्त की है, वहीं महर्षि पतंजलि की योग पद्धति ने मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया है। 'चरक संहिता' ने चिकित्सा विज्ञान को नई दिशा दी, जबकि 'सामवेद' की गान परंपरा ने संगीत को समृद्ध किया। आर्यभट्ट, चरक, कणाद, नागार्जुन, हर्षवर्धन, अगस्त्य, भारद्वाज ऋषि, शंकराचार्य, आचार्य अभिनवगुप्त और स्वामी विवेकानंद जैसे महान विचारकों ने अपने ज्ञान से विश्व को आलोकित किया। किंतु इन गूढ़ सिद्धांतों और दार्शनिक विचारधाराओं को केवल ग्रंथों तक सीमित रखने के स्थान पर लोकमानस तक पहुँचाने का कार्य भक्तिकाल के संत कवियों ने किया। उन्होंने इसे सरल, सुलभ और जनभाषा में प्रस्तुत कर भारतीय ज्ञान परंपरा को जन-जन तक पहुँचाया, जिससे यह केवल विद्वानों तक सीमित न रहकर समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उपयोगी बन सकी।

भारतीय संस्कृति, जो साहित्य, कला, वास्तुकला, नृत्य और संगीत में समाहित है, विश्व की समृद्धतम संस्कृतियों में से एक मानी जाती है। हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा एवं संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भक्ति साहित्य ने इस परंपरा को सुलभ बनाकर समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचाया, जिससे यह केवल आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और बौद्धिक चेतना का भी माध्यम बना। आधुनिक भारत में इस परंपरा को पुनर्जीवित करने और इसे शिक्षा एवं जीवनशैली का अभिन्न अंग बनाने की आवश्यकता है, जिससे भारत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को न केवल सुरक्षित रख सके, बल्कि वैश्विक मंच पर प्रभावी रूप से प्रस्तुत भी कर सके।

निष्कर्ष- भारतीय ज्ञान परंपरा केवल प्राचीन ग्रंथों और दार्शनिक अवधारणाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत परंपरा है, जो समय के साथ विकसित होती जा रही है। भक्तिकाल ने इसे जनसामान्य तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे यह केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक और बौद्धिक चेतना का भी आधार बनी। आधुनिक साहित्यकारों ने इस परंपरा को नए संदर्भों में प्रस्तुत कर समाज में जागरूकता और सुधार की दिशा में कार्य किया। इसके प्रचार-प्रसार में हिंदी भाषा ने विशेष योगदान दिया, क्योंकि यह जनमानस की भाषा होने के कारण इस ज्ञान परंपरा को अधिक प्रभावी रूप से विस्तारित करने का माध्यम बनी।

आज जब विश्व भारतीय योग, आयुर्वेद, वेदांत और सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाने की ओर बढ़ रहा है तब भारत के लिए भी यह आवश्यक है कि वह अपनी ज्ञान परंपरा को आधुनिक शिक्षा और जीवनशैली में समाहित करे। हिंदी साहित्य इस दिशा में एक सेतु का कार्य करता है, जो प्राचीन ज्ञान को

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर नई पीढ़ी तक पहुँचाने में सहायक बनता है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल इतिहास की धरोहर नहीं, बल्कि भविष्य का मार्गदर्शन करने वाली एक प्रकाश-पुंज है, जिसे संरक्षित, विकसित और वैश्विक मंच पर स्थापित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.भारतीय ज्ञान परंपरा और विचारक - रजनीश कुमार शुक्ल ,प्रभात प्रकाशन , नई दिल्ली।

2.भारतीय दर्शन - हरेंद्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स , नई दिल्ली।

3.भक्ति आंदोलन और काव्य - गोपेश्वर सिन्हा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

4.भक्ति का संदर्भ - देवी शंकर अवस्थी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

5.भारतीय दर्शन सरल परिचय-देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

संदर्भ:

1.उपनिषद- भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल स्रोत है।

2.संस्कृत- भारत की सभ्यता और संस्कृति का मूल है।

3.कबीर के दोहे को 'साखी' (अर्थात् 'साक्षी') इसलिए कहते हैं कि वे जीवन- सत्य ही व्यक्त करते हैं।

◆ सह आचार्य, हिंदी विभाग
सरकारी बी जे एम कॉलेज
चवरा , कोल्लम

छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव 'उच्चभूमि' में जनजातियों का साक्षरता विकास स्तर

◆ **डॉ. खेमचंद**

शोध सरांश - प्रस्तुत शोध पत्र छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगांव उच्चभूमि- में जनजातियों के साक्षरता विकास स्तर से संबंधित है। साक्षरता से यह समझा जाता है कि कोई व्यक्ति कितना पढ़ा-लिखा है और कितनी भाषाओं को समझता-बोलता और लिखता है। साक्षरता व्यक्ति के जीवन में ज्ञान और सामर्थ्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होती है जो उसे विभिन्न विषयों को समझने और अपने सोचने को व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करती है। शैक्षिक विकास के स्तर को चार श्रेणियों उच्च, मध्यम, निम्न और अत्यंत निम्न स्तर में विभाजित किया गया है। दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में विकासखंडों का औसत सूचकांक 76.73 से 81.61 तक है। उच्च चतुर्थक मान (81.07) से अधिक वाले विकासखंड को शैक्षिक विकास के उच्च स्तर में समूहीकृत किया जाता है। यह विकासखंड मोहला है। मध्यम चतुर्थक मान (76.92 से 81.07 तक) के बीच सूचकांक मूल्य वाले विकासखंडों को रखा गया है जिसके अंतर्गत गुरुर और बालोद विकासखंड है। निम्न चतुर्थक मान (72.79 से 76.92 तक) के बीच सूचकांक मूल्य वाले वनाच्छादित, पहाड़ी और पठारी क्षेत्र विकासखंडों को इस श्रेणी में रखा गया है जिसके अंतर्गत डौण्डी, मानपुर और अंबागढ़ चैकी विकासखंड है। निचले चतुर्थक मान (72.79) से कम मूल्य वाले विकासखंड को शैक्षिक विकास के अत्यंत निम्न स्तर श्रेणी में रखा गया है जिसके अंतर्गत डौण्ड़ी लोहारा विकासखंड है। निर्धनता को दूर करके, शिक्षा के प्रति जागरूक करके शैक्षिक विकास के स्तर में वृद्धि किया जा सकता है।

शब्द कुंजी - शैक्षिक विकास, साक्षरता, औसत सूचकांक, शिक्षा एवं जनजाति।

प्रस्तावना : साक्षरता से यह समझा जाता है कि कोई व्यक्ति कितना पढ़ा-लिखा है और कितनी भाषाओं को समझता-बोलता और लिखता है। साक्षरता व्यक्ति के जीवन में ज्ञान और सामर्थ्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होती है जो उसे विभिन्न विषयों में समझने और अपने

सोचने को व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करती है। यूनेस्को ने पहली बार 7 नवंबर, 1965 को 'विश्व साक्षरता दिवस' मनाने का फैसला किया। इसके बाद 8 सितंबर, 1966 को दुनिया ने पहली बार 'अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस' मनाया। दुनिया के कई देशों ने इसमें भाग लिया और जन-जन तक शिक्षा पहुँचाने का संकल्प लिया। साक्षरता विकास की इकाई है, किसी भी राष्ट्र या समाज के विकास के लिए साक्षरता एक महत्वपूर्ण सूचक है।

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों की साक्षरता विकास स्तर का आकलन तथा सुझाव प्रस्तुत करना है।

आँकड़ों के स्रोत एवं विधि तंत्र : प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। आँकड़ों के संकलन हेतु सात विकासखण्डों से 2-2 गाँवों का उद्देश्यपरक यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से कुल 14 गाँवों का चयन किया गया है। चयनित गाँवों के 30% परिवारों से परिवारिक-सामाजिक एवं आर्थिक आँकड़ा साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त किया गया है। अध्ययन क्षेत्र से 906 परिवारों से सूचना एकत्र की गई है तथा साख्यिकीय विधि के अंतर्गत चतुर्थक विचलन गुणांक का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र :अध्ययन क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य का दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि भौगोलिक दृष्टि से शिवनाथ बेसिन का दक्षिणी भाग है। यह उच्चभूमि 20०07' से 21०06' उत्तरी अक्षांश एवं 80०24' से 81०38' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। क्षेत्र का विस्तार 5517.17 वर्ग किलोमीटर है। इस उच्चभूमि की समुद्र सतह से औसत ऊँचाई 500 मीटर तथा वन क्षेत्र 40.67% है। महानदी अपवाह तंत्र तथा गोदावरी तंत्र प्रमुख है, इसके अन्तर्गत सात विकासखण्ड शामिल हैं, इसमें राजनांदगाँव जिले के तीन विकासखण्ड-अम्बागढ़ चैकी, मोहला, मानपुर, तथा बालोद जिले के चार विकासखण्ड-डौण्डी, डौण्डी लोहारा, बालोद एवं गुरूर सम्मिलित हैं। 2011 जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र का साक्षरता दर 69.16% है, जिसमें अनुसूचित जनजाति का 62.69% एवं अनुसूचित जाति का 56.27% है। ग्रामीण जनसंख्या 8,03,438 एवं नगरीय जनसंख्या 1,01,922 है। जनसंख्या वृद्धि 12.38%, जनसंख्या घनत्व 164 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी., लिंगानुपात 1026 स्त्री प्रति हज़ार, परिवहन क्षेत्र में राज्य सड़क मार्ग-06 (अन्तागढ़-मानपुर-भानुप्रतापपुर-नरहरपुर-दुधावा) एवं मार्ग-07 (कबीरधाम-राजनांदगाँव-मानपुर) तथा जिला सड़क मार्ग (दुर्ग-दल्लीराजहरा) प्रमुख हैं।

साक्षरता विकास स्तर : जनजातीय क्षेत्रों में शैक्षणिक विकास के लिए शैक्षणिक सुविधा उपलब्ध कराने के सरकार के विशेष प्रयास भी जनजातियों में शिक्षा के प्रति जागृति पैदा नहीं कर सके। परिणामस्वरुप साक्षरता दर में अधिक वृध्दि नहीं हो पा रही है। छत्तीसगढ़ राज्य में साहित्यिक दर में दशकीय परिवर्तनों के साथ-साथ शैक्षिक विकास की क्षेत्रीय विविधता के स्थानिक प्रतिरुप का विश्लेषण किया गया है (सरला शर्मा एवं अनिमा बनर्जी, 2007)।

शैक्षिक विकास के चर : साक्षरता के दर और शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता के बीच अंतर्संबंध है। अर्थात् शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता जितनी अधिक होगी, साक्षरता की दर भी अधिक होगी। इस परिकल्पना का परीक्षण काई-वर्ग परीक्षण विधि द्वारा किया जाता है। यह देखकर आश्चय होता है कि क्षेत्र के जनजातीय क्षेत्रों में अधिक शैक्षिक सुविधाएँ होने के बावजूद साक्षरता दर कम है। शिक्षा की गुणवत्ता, साक्षरता की दर और शैक्षिक विकास की प्रगति के क्षेत्रीय प्रतिरुप अलग-अलग थे। आम तौर पर जनजातिय क्षेत्रों में शिक्षा के विकास में बाधा डालने

वाले मुख्य कारक लड़के और लड़कियों के प्रति माता-पिता का रवैया, निवास स्थान और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के बीच अंतर हैं। लोग महिलाओं की शिक्षा के प्रति उचित रुचि नहीं लेते हैं और विशेष रुप से जनजातियों में इस मामले में असंतोष है, यही कारण है कि इस क्षेत्र में 54.61% पुरुष साक्षरों की तुलना में 45.39% जनजातीय महिलाएँ साक्षर हैं। जनजातीय लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। उपरोक्त कारकों में क्षेत्रीय विभिन्नता स्वाभाविक रुप से जनजातियों के बीच साक्षरता में स्थानिक भिन्नता लाती है। हालाँकि, जनजाति में शिक्षा के विकास में बड़े बदलाव देखे गए हैं। मध्यप्रदेश राज्य के छत्तीसगढ़ क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों के बीच साक्षरता दर में दशकीय परिवर्तनों के साथ-साथ शैक्षिक विकास के स्तर के स्थानिक प्रतिरूप का विश्लेषण किया गया है (एम. पी. गुप्ता एवं सरला शर्मा, 1998)।

शैक्षिक विकास का स्तर : साक्षरता दर एवं शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता का शुध्द परिणाम है, जो आगे चलकर शिक्षा सुविधाओं के विकास और सुधार को प्रभावित करती है। शैक्षिक विकास के स्तर को निर्धारित करने के लिए विकासखंड स्तर पर उल्लिखित बारह चर अर्थात् साक्षरता दर पुरुष साक्षरता दर, महिला साक्षरता दर, ग्रामीण साक्षरता दर, शहरी साक्षरता दर, अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति साक्षरता दर, छात्रों की संख्या, शिक्षकों की संख्या, प्रति संस्थान शिक्षक विचार, छात्र-शिक्षक अनुपात, संस्था-विद्यार्थी अनुपात पर विचार किया गया है।

प्रत्येक चर को क्षेत्रीय औसत के प्रतिशत के रुप में परिवर्तित करके और विकासखंड के सभी चरों को जोड़कर विकासखंड के लिये एक औसत सूचकांक प्राप्त किया गया है और चतुर्थक के आधार पर शैक्षिक विकास के स्तर को चार श्रेणियों-उच्च, मध्यम, निम्न और अत्यंत निम्न स्तर-में विभाजित किया गया है। दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में विकासखंडों का औसत सूचकांक 76.73 से 81.61 तक है।

1. शैक्षिक विकास का उच्च स्तर
2. शैक्षिक विकास का मध्यम स्तर
3. शैक्षिक विकास का निम्न स्तर
4. शैक्षिक विकास का अत्यंत निम्न स्तर।

1. शैक्षिक विकास का उच्च स्तर : उच्च चतुर्थक मान (81.07) से अधिक वाले विकासखंड को शैक्षिक विकास के उच्च स्तर में समूहीकृत किया जाता है। यह विकासखंड मोहला है, जहाँ उच्च साक्षरता का निकटतम कारण वर्तमान में शहरीकरण है एवं शैक्षिक सुविधा की उपलब्धता के कारण उच्च साक्षरता दर 81.61% है।

2. शैक्षिक विकास का मध्यम स्तर : मध्यम चतुर्थक मान (76.92 से 81.07 तक) के बीच सूचकांक मूल्य वाले विकासखंडों को इस श्रेणी में रखा गया है। ये विकासखंड गुरुर और बालोद हैं। बालोद जिला में लौह अयस्क की उपलब्धता भिलाई इस्पात संयंत्र की निकटता के कारण शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण साक्षरता दर है।

3. शैक्षिक विकास का निम्न स्तर ; निम्न चतुर्थक मान (72.79 से 76.92 तक) के बीच सूचकांक मूल्य वाले वनाच्छादित, पहाड़ी और पठारी क्षेत्र विकासखंडों को इस श्रेणी में रखा गया है। इनमें मध्यम से निम्न स्तर के औद्योगीकरण और शहरीकरण वाले विकासखंड शामिल हैं। ये विकासखंड डौण्डी, मानपुर और अंबागढ़ चैकी है।

4. शैक्षिक विकास का अत्यंत निम्न स्तर : निचले चतुर्थक मान (72.79) से कम मूल्य वाले विकासखंड को शैक्षिक विकास के अत्यंत निम्न स्तर श्रेणी में रखा गया है। ये विकासखंड डौण्डी लोहारा हैं। यहाँ अत्यंत निम्न स्तर की साक्षरता का प्रमुख कारण शैक्षिक सुविधा की उपलब्धता में कमी एवं शिक्षा के प्रति

जागरूकता की कमी है। अन्य विकासखंडों की तुलना में साक्षरता दर 72.79% से कम है। अतः दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि की जनजातियों में साक्षरता विकास स्तर का अध्ययन किया गया है।

निष्कर्ष : शैक्षिक विकास के स्तर को चार श्रेणियों उच्च, मध्यम, निम्न और अत्यंत निम्न स्तरों में विभाजित किया गया है। दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में विकासखंडों का औसत सूचकांक 76.73 से 81.61 तक है। उच्च चतुर्थक मान (81.07) से अधिक वाले विकासखंडों को शैक्षिक विकास के उच्च स्तर में समूहीकृत किया जाता है। ये विकासखंड मोहले है। मध्यम चतुर्थक मान (76.92 से 81.07 तक) के बीच सूचकांक मूल्य वाले विकासखंडों को इस श्रेणी में रखा गया है जिसके अंतर्गत गुरुर और बालोद विकासखंड हैं। निम्न चतुर्थक मान (72.79 से 76.92 तक) के बीच सूचकांक मूल्य वाले वनाच्छादित, पहाड़ी और पठारी क्षेत्र विकासखंडों को इस श्रेणी में रखा गया है जिसके अंतर्गत डौण्डी, मानपुर और अंबागढ़ चैकी विकासखंड हैं। निचले चतुर्थक मान (72.79) से कम मूल्य वाले विकासखंडों को शैक्षिक विकास की अत्यंत निम्न स्तर श्रेणी में रखा गया है जिसके अंतर्गत डौण्ड़ी लोहारा विकासखंड है।

सुझाव : दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि की जनजातियों में शैक्षणिक विकास की समस्या का अध्ययन किया गया है। अतः इसके समाधान का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है कि शैक्षणिक विकास की समस्या को कैसे दूर करें। जनजाति की समस्याओं का समाधान केवल एकल उपाय से संभव नहीं है। वर्तमान में जनजातियों की समस्याओं के समाधान और उनके विकास के लिए हालाँकि, कुछ महत्वपूर्ण कदम निम्नलिखित हैं- शिक्षा का विकास, गरीबी दूर करना, शिक्षा के प्रति प्रेरणा जागृत करना, मार्गदर्शन का विकास, सामाजिक समस्याओं को दूर करना, आर्थिक पिछड़ापन दूर करना, व्यावहारिक शिक्षा, स्वास्थ्य सुधार, विकास कार्यक्रम, शैक्षणिक सुविधाओं की उपलब्धि एवं शिक्षक-विद्यार्थी में उचित संबंध आदि। जनजातियों के विकास के लिए शिक्षा को सर्वोपरि महत्व देना अनिवार्य है।

सन्दर्भ सूची

1. गुप्ता, एम. पी. एवं सरला शर्मा (1998) : अनुसूचित जनजातियों के बीच शैक्षिक विकास" , Annals of The National Association of Geographer's, India. Vol.-XVIII, Pt.-1 and 2, pp. 110- 120.

2. बोस पूजा (2023): द टाइम्स आफ इडिया समाचार पत्र, पेसिफिक वल्ड स्कूल, जनवरी, 2023।

3. शर्मा सरला एवं अनिमा बनर्जी (2007): "छत्तीसगढ़ (भारत) में महिला शिक्षा में क्षेत्रीय असमानताएँ", The Research Journal of Geographer's Association Geo (GAG), Vol.- 4, Pt.1, pp. 68-74.

4. खेमचंद एवं टिके सिंह (2022): "दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में अनुसूचित जनजातियों में शाला त्याग के आर्थिक कारण एवं साक्षरता स्तर", शोध संचार बुलेटिन In International Bilingual Peer Reviewed Research Journal, Vol.-12, Issue- 47, July-Sept. pp. 42-47.

5. खेमचंद एवं टिके सिंह (2023) : "छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों में साक्षरता प्रतिरूप", *केरल ज्योति* Journal, Vol.-4, Issue- 60, September. pp. 37-40.

6. खेमचंद (2024) : "छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों की शैक्षिक गत्यात्मकता: एक भौगोलिक विश्लेषण", अप्रकाशित शोध-प्रबंध, पं. रवि. शु. वि. वि. रायपुर (छ. ग.).

◆ अथिति व्याख्याता (भूगोल)
शासकीय सुखराम नागे महाविद्यालय नगरी,
धमतरी (जिला), छत्तीसगढ़-493778
मो.877017591

सभ्यता और स्त्री-मुक्ति का परस्पर संबंध: अनामिका के उपन्यास 'आईना साज़' के संदर्भ में

◆ विनीजा विजयन

प्रस्तावना

सभ्यता और स्त्री मुक्ति के बीच का अंतर्संबंध बहुत गहरा है। सभ्यता का विकास समाज के मूल्यों, सांस्कृतिक दृष्टिकोण तथा संस्थागत ढाँचों में बदलाव लानेवाली एक सामाजिक प्रक्रिया है। स्त्री मुक्ति भी इसी प्रक्रिया का हिस्सा है, जिसमें महिलाओं को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता की ओर अग्रसर किया जाता है। किसी भी समाज की सभ्यता जितनी प्रगतिशील होती है, उतनी ही स्त्री की स्थिति स्वतंत्र और सम्मानजनक होना दोनों के बीच के अंतर्संबंध को दिखाता है।विभिन्न सभ्यताओं के विकास के साथ-साथ स्त्रियों की स्थिति और उनके अधिकारों में परिवर्तन आता रहा है।परंतु यह परिवर्तन कई बार सतही रहा और स्त्रियाँ वास्तविक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए संघर्ष करती रही हैं। महादेवी वर्मा कहती हैं-"भारतीय संविधान ने स्त्री को मताधिकार ही नहीं , नागरिक के सभी अधिकार प्रदान किए। उसके कार्य-क्षेत्र में भी अधिक विविधता तथा व्यापकता आ गई हैं। उत्तराधिकार,दहेज,विवाह-विच्छेद संबंधी विधान बन जाने से उसके वैधानिक अधिकारों में भी वृद्धि हुई है। अतः सामाज के गठन में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन संभव नहीं हो सका।"[1] अर्थात् कानूनी अधिकारों और विधान के बावजूद समाज में कोई बड़े पैमाने पर क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को नहीं मिला है। समाज में गहरी जड़ें जमा चुकी पितृसत्तात्मक और पारंपरिक सोच अभी भी स्त्रियों की स्वतंत्रता और समानता को पूरी तरह से स्वीकार नहीं करती। सामाजिक संरचनाओं में बदलाव के लिए सिर्फ कानूनी अधिकार पर्याप्त नहीं होते, बल्कि इसके लिए समाज की मानसिकता और सांस्कृतिक मान्यताओं में भी बदलाव ज़रूरी है। अनामिका का उपन्यास *'आईना साज़'* दो अलग-अलग कालखंडों को जोड़ते हुए, अतीत और वर्तमान के आईने में स्त्रियों की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। 'आईना साज़' का अर्थ है "आईना बनाने वाला" या "दर्पणकार," जो उपन्यास के शीर्षक का महत्व स्पष्ट करता है। "यह उपन्यास, प्रेम और परिवार का, राजनीति और साहित्य का, धर्म और अध्यात्म का संगम कहा जा सकता है। यहाँ भारतीयता, देशजता और स्थानिकता का महाराग है, जिसे विश्वव्यापी स्तर पर प्रस्तुत किया गया है।यहाँ अध्यात्म और बौद्धिकता, साहित्य और संगीत, अतीत और वर्तमान की कई परतें हैं, जिन्हें हम सहज ही एक-एक कर उघड़ते हुए दिखते हैं। हिंसा और घृणा से ओतप्रोत समाज में सहित्य सहित कला के सभी रूपों की प्रासंगिकता को उभारा है।"[2] यह उपन्यास मध्यकालीन और आधुनिक समय के सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों को एक-दूसरे के समक्ष रखते हुए, जीवन के दांवपेंचों और स्त्री जीवन की वास्तविकताओं को उजागर करता है।उपन्यास में सूफ़ी भाव से ओत-प्रोत एक गहन मानवीय संदेश छिपा है, जो धर्म, जाति, लिंग और वर्ग से परे मानवता की स्थापना पर बल देता है। इस उपन्यास में सभ्यता और स्त्री मुक्ति का परस्पर संबंध गहराई से दर्शाया गया है। इस शोध आलेख का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि किस प्रकार *"आईना साज़"* में सभ्यता के विभिन्न चरणों में स्त्री की स्थिति का चित्रण किया गया है, और किस प्रकार यह उपन्यास स्त्री-मुक्ति के संघर्ष और सभ्यता के बीच के जटिल संबंधों को उजागर करता है।

सभ्यता और स्त्री-मुक्ति

भारत की संस्कृति और सभ्यता विश्व की

सर्वाधिक प्राचीन और समृद्ध मानी जाती है। इसे केवल भारतीयों के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व की सभी संस्कृतियों के लिए एक जननी के रूप में देखा गया है। यह विज्ञान, कला, और राजनीति में अद्वितीय होने के साथ में जीने की कला में भी इसका विशेष स्थान है। समय के साथ अन्य देशों की संस्कृतियाँ धूमिल होती गईं, किंतु भारतीय संस्कृति अपनी परंपराओं और मूल्यों के साथ आज भी सजीव और अक्षुण्ण बनी हुई है।संस्कृति किसी भी देश, जाति या समुदाय की आत्मा होती है। इसके माध्यम से हम अपने आदर्शों, जीवन मूल्यों, और संस्कारों का निर्धारण करते हैं। सामान्यतः संस्कृति का अर्थ संस्कार, सुधार, परिष्कार, शुद्धता, और सजावट होता है। परंतु आधुनिक समय में इसे सभ्यता का पर्याय मानने की भूल की जाती है, जिससे कई भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गई हैं।वास्तविकता में संस्कृति और सभ्यता दो अलग-अलग चीज़ें हैं। जहाँ सभ्यता का संबंध बाहरी जीवन जैसे खान-पान, रहन-सहन, और बोलचाल से होता है, वहीं संस्कृति हमारी सोच और जीवनदृष्टि से जुड़ी होती है। संस्कृति कहीं अधिक व्यापक और गहन होती है और इसका अनुकरण करना संभव नहीं है। सभ्यता का अनुकरण हो सकता है, पर संस्कृति स्वाभाविक और आंतरिक होती है। सभ्यता का विकास एक सतत प्रक्रिया है, जो समय और समाज के विभिन्न पहलुओं से प्रभावित होती है। हर सभ्यता ने अपने समय के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, और राजनीतिक ढांचे के आधार पर स्त्रियों की स्थिति का निर्धारण किया है। प्राचीन सभ्यताओं में महिलाओं की स्थिति समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक नियमों पर निर्भर करती थी।

मध्यकालीन भारतीय सभ्यता में स्त्री का स्थान धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिबंधों में बंधा हुआ था। पितृसत्ता के दबाव में उसे सीमित अधिकार प्राप्त थे और उसकी स्वतंत्रता की अवधारणा समाज द्वारा तय की जाती थी। उपन्यास में अमीर खुसरो कहते हैं - "औरत पर जमीन के टुकड़े की तरह क़ब्ज़ा कर लेने की वहशत ज़रा भी ठहरकर नहीं सोचती कि ज़मीन की तरह औरत बेजान नहीं होती, खुदा का नूर होती है।"[3] उपन्यास में पद्मावती जैसी पात्रों को अपनी इज़्ज़त और सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मदाह करना पड़ा। मृणाल पाण्डे के मत में "युद्ध हो या दंगे फसाद सबका क्रूरतम कोप झेलता हैं औरत का शरीर, उसका मन,उसकी संवेदना।"[4] यह स्पष्ट होता है कि उस समय की सभ्यता में स्त्री की पहचान और सम्मान केवल उसकी पवित्रता और परिवार की प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ था। मध्यकालीन भारत में, धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक परंपराओं ने स्त्री को एक वस्तु के रूप में देखा, जिसका कर्तव्य केवल पुरुषों के आदेश का पालन करना था। न उसे अपनी इच्छा से जीने की अनुमति थी न अपनी रुचि को आयाम देने की। उपन्यास में अमीर और उनकी बीबी के बीच हुए संवाद इसे स्पष्ट करता है- "आम बीबीयों की तरह मुझ पर तंज कर रही हो, तुमसे मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी। मैंने तो एक शायर से ब्याह किया था।.... प्रत्युत्तर में मेहर कहती है "और उसे एक अदद बीवी बनाकर छोड़ दिया...।"[5] सती प्रथा, बाल विवाह और पर्दा प्रथा इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय स्त्रियों की मुक्ति की कोई ठोस अवधारणा मौजूद नहीं थी। उनके पास अपनी स्थिति को सुधारने या अपने जीवन को स्वतंत्र रूप से जीने का अधिकार नहीं था। समाज के इस ढांचे में स्त्रियों की स्थिति कमज़ोर और निर्बल थी। उनका जीवन पारिवारिक और धार्मिक ज़िम्मेदारियों में सीमित था। उनके पास शिक्षा, स्वाधीनता और व्यक्तिगत विकास के अवसर बहुत कम थे। विवाह को स्त्री के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू माना जाता था, जिसमें उनके अधिकार सीमित रहते थे। विशेष रूप से उच्च जाति की स्त्रियाँ पर्दा प्रथा, सती प्रथा, और बाल विवाह जैसी प्रथाओं से बंधी हुई थीं, जो उनकी स्वतंत्रता और सामाजिक स्थिति को और अधिक बाधित करती थीं। धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलनों ने स्त्रियों की

स्थिति पर मिश्रित प्रभाव डाला। इस्लामिक शासन और कानूनों के तहत कुछ सुधार हुए, जैसे संपत्ति के अधिकार और शिक्षा के क्षेत्र में, लेकिन सामाजिक नियमों और धार्मिक प्रथाओं ने उन्हें सीमित कर दिया।

उपन्यास में मेहरू और बेटी कायनात का अपनी कला को उजागर करने के खिलाफ हुए बंदिशों के विरोध में प्रतिरोध करते देख खुसरो कहते हैं- "औरत की शायरी उसके हुस्न की तरह सिर्फ़ उसके शौहरे का मन बुलन्द करे, ये जरूरी है, वो क्यों नहीं समझती ? क्यों ऐसे बाग़ी होने पर उतारू है?"[6] लेखिका ने यहाँ मेहरू और कायनात को मध्यकालीन भारत के उन स्त्रियों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है जिन्होंने सामन्तवादी समाज में आपनी पहचान बनाने के लिए संघर्ष किया। भक्ति और सूफी आंदोलनों ने स्त्रियों के प्रति अपेक्षाकृत सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। संतों ने स्त्रियों को आध्यात्मिक मार्ग में समान स्थान दिया। मीराबाई इस बात का प्रतीक है कि महिलाएँ भी धार्मिक और आध्यात्मिक विकास की दिशा में आगे बढ़ सकती हैं। डॉ.के एम मालती के शब्दों में "मध्ययुगीन समाज के राजघराने की रानी मीरा ने सती होने से इनकार किया और घराने से बाहर आयी। यह मामूली क्रान्तिकारी काम नहीं था। स्त्री विमर्श की दृष्टि से मीरा का जीवन और कृतित्व आज भी प्रासंगिक है। राजसी दमन और स्त्री की गुलामी के खिलाफ़ उनका प्रतिरोध ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। मीरा के पदों में उनके जीवन- संघर्ष की प्रामाणिक अनुगूंज है।"[7] मीराबाई ने सामाजिक बंधनों को तोड़कर भक्ति को अपना जीवनमार्ग बनाया, जिससे समाज को यह संदेश मिला कि स्त्रियाँ भी स्वतंत्र रूप से अपने जीवन के निर्णय ले सकती हैं। मध्यकालीन भारत में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ खड़ी हो कर अपने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करनेवालीं रानी दुर्गावती, चांद बीबी और रानी लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाओं ने न केवल युद्ध में अपनी वीरता दिखाई, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक नेतृत्व की क्षमता को भी प्रमाणित किया था। आशारानी व्होरा के शब्दों में "भारत पर मुस्लीम आक्रमणों के दौर में समय पड़ने पर राज्य की बागड़ोर स्वयं संभाल,युद्ध लड़ले और वीरता पूर्ण शत्रु सेना के छक्के छुड़ाने से लेकर सामने हार देख , दुशमन के हाथ आने से पूर्व स्वयं की कटार से आत्मघात करने, सामुहिक चिताएं जलाकर 'जौहर' दिखाने, युद्ध से पीठ दिखारक आने वाले पति पुरुषों का अपमान करने तक अनेक वीरगाधाओं से हमारा इतिहास भरा पड़ा है। रानी दुर्गावती, माता जाजाबाई, पन्नादाई, वीरमती, देवलदेवी, पद्मिनी, रानी भवानी, ताराभाई,हाड़ी रानी आदि न जाने कितने नाम हैं, जिन्होंने मातृभूमी और अपनी अस्मिता की रक्षा करने में अपनी जान की परवाह नहीं की और युद्ध कौशल भी दिखाए तथा राजकाज की सूझबूझ भी।"[8] ये स्त्रियाँ स्त्री-शक्ति और उनके नेतृत्व के प्रति समाज की धारणा को चुनौती देने वाली महत्वपूर्ण उदाहरण थीं।

उपन्यास में मेहर और उनकी बेटी कायनात इन संघर्षरत स्त्रियों के प्रतिनिधियों के रूप में सामने आती है, जो खुसरो को भी अंधकार से रोशनी की ओर ले जाने में सक्षम है। खुसरो कहते है-" पद्मिनी और अम्मा, मलिका, महरू और मेरी सबसे छोटी सन्तान, कायनात, मेरी जिन्दगी में खुदा की ओर खुलने वाली ऐसी नायाब खिड़कियाँ थीं जिनके बिना मेरे दुविधा-भरे दोचित्ता अँधेरों को एक क़तरा रोशनी का न मिलता, नूर को तरसती रह जाती ये आँखें...।"[9] स्त्रियों ने हमेशा ही समाज को रोशनी दी है। उनकी शक्ति, साहस, और संघर्ष ने भारतीय सभ्यता को समृद्ध किया है ।आज, जब हम अपने समाज की ओर देखते हैं, तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह वही भूमि है जहाँ मीराबाई, रानी दुर्गावती जैसीअनेक स्त्रियों ने स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी। यह हमारा कर्तव्य है कि उन्हें समान अधिकार और सम्मान दें, ताकि वे अपनी क्षमताओं को पहचान सकें और समाज को एक नई दिशा दे सकें।

आधुनिक सभ्यता में महिलाओं की स्थिति और उनके सतत संघर्ष की कहानी पर एक नज़र ड़ाले

तो यह समझ में आता है कि, "भारतीय समाज में पुरुषों का जो लूबा शासन भौतिक तथा मानसिक दोनों रहा है उसके तले तालीम भारतीयों को सदा दी जाती रही कि वे चाहे स्त्री हो या पुरुष उनका नैतिक कर्तव्य है कि पुरुषंसम्मत, पुरुषप्रेरित तथा पुरुषपोषित इस शासन के स्थायित्व को पुख्ता बनाने की दृष्टि से हर काम करें।"[10] सभी स्तरों पर स्त्रियों की ही जहालत होती है। अर्थात् वर्तमान परिस्थिति में ज़्यादा बदलाव नहीं आया। नित्यानंद तिवारी कहते हैं "आईना साज़ खुसरो की आत्मकथात्मक सामग्री पर लिखा गया है। लेकिन उसके राग-रेशे में वर्तमान के रेशे कुछ ज़्यादा उभरे हुए हैं और ज़्यादा कहते हैं पुराने प्रसंगों की घटनाएँ। व्यंजनाओं के सहारे वर्तमान के अर्थ संकलित करने लगती हैं। इस उपन्यास में यह कला की तरह नहीं, सहज भाव से काम करती है।"[11] आधुनिक काल में विज्ञान, सूचना क्रांति और लोकतंत्र का उदय हुआ, जिसने सभ्यता को भले ही नई दिशा दी हो, लेकिन स्त्रियों की स्थिति में बुनियादी समस्याएँ बरकरार रहीं। आज बाज़ारवाद के इस युग में स्त्री माल के रूप में परोसी जा रही है। इससे उसकी अस्मिता का संकट और गहरा हुआ है। ज़रूरत है, स्त्रियों की सशक्त भागीदारी की जिससे वह अपना पक्ष मज़बूत कर सके। उपन्यास में सपना कहती है "प्यार और रोज़गार शरीर की ही नहीं, आत्मा की भी मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। जब तक शिक्षा रोज़गार से नहीं जुड़ेगी और व्यक्ति-मात्र में अन्तर्निहित उसकी अनन्त सम्भावनाएँ मुकुलित करने वाला परिवेश, साहित्य-संगीत, सारी भगिनी कलाएँ और सूफ़ियाने दर्शन मिलकर नहीं रचेंगे, राजनेताओं और बाहुबलियों के आगे ता-थैया करने को मज़बूर ही रहेगी युवा-शक्ति।" [12] हमारे समाज में महिलाओं का अपना कोई स्वतंत्र सार्वजनिक क्षेत्र नहीं है, जहाँ वे अपने विचार व्यक्त कर सकें। इसी कारण वे समाज में उपेक्षित और कमज़ोर रह जाती हैं, जिससे उन्हें हर प्रकार के शोषण का सामना करना पड़ता है।इस मुद्दे को भी उपन्यास सामने रखता है "स्त्रियों का कोई अपना पब्लिक स्फियर भी तो नहीं है, इसलिए उन सबको इतना सहना पड़ता है- जिनके सर पर किसी जलज सिंह जैसे पति-पिता-पेट्रन का हाथ नहीं जो चीख-चीख़कर उनकी श्रेष्ठता का दावा ही न ठोंकें बल्कि शराब पिला-पिलाकर छुटभैयों के मन में यह बात भी भरें कि सारे 'प्रतिपक्षी' निकृष्ट-भ्रष्ट और अधम हैं।" [13] जो महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए खड़ी होती हैं, उनके खिलाफ षड्यंत्र किए जाते हैं। राजनीतिक और सामाजिक ताकतों द्वारा उन्हें दबाने के प्रयास किए जाते हैं ताकि वे अपनी आवाज़ न उठा सकें। परंतु, ऐसे संघर्षों में, कई महिलाएँ अपनी अद्वितीय शक्ति और साहस का परिचय देती हैं। वे समाज की बुरी ताकतों के सामने निडर होकर खड़ी होती हैं। उन्हें मौत की धमकियाँ दी जाती हैं, गवाहों की हत्याएँ होती हैं, समाज में उनके बहिष्कार का प्रयास किया जाता है। परंतु ये महिलाएँ न केवल अपनी लड़ाई ज़ारी रखती हैं, बल्कि अन्य महिलाओं के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बनती हैं। यह लड़ाई केवल महिलाओं की स्वतंत्रता और समानता की नहीं है, बल्कि यह हमारी सभ्यता के भविष्य की लड़ाई है। यह एक ऐसी लड़ाई है जो हमें यह सिखाती है कि सच्ची सभ्यता वही है जहाँ महिलाओं को सम्मान, समानता और स्वतंत्रता मिलती है। ललिता चतुर्वेदी कहती है-"सार्वजनिक जीवन में उतरने वाली हर सर्जनात्मक स्त्री के जीवन में नमरूद, शम्सुल फ़कीर और कोतवाल रूप बदलकर आते रहते हैं- कई बार अलग-अलग, कई बार एक ही शख़्स में घुलकर। और अगर रूह में दम-खम हो तो हर चुनौती मुक्ति की राह बन जाती हैं।"[14] आईना साज़ उपन्यास में आधुनिक स्त्री पात्रों-सपना जैन, ललिता चतुर्वेदी, श्यामा मुखर्जी आदि-के माध्यम से उपन्यास में यह दिखाया गया है कि स्त्री को आज भी पितृसत्ता और बाज़ारवाद के बीच संघर्ष करना पड़ता है। भले ही उन्हें आधुनिक सभ्यता ने कुछ स्वतंत्रताएँ दी हों, परंतु वे आज भी

बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, और पूंजीवादी संरचनाओं के शोषण की शिकार हैं।

इसके अतिरिक्त लेखिका ने उपन्यास में समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलताओं, स्त्रियों की बदलती भूमिकाओं और संघर्षों, और आदर्शवाद और यथार्थ के बीच के अंतर को भी दर्शाया है। उपन्यास में श्यामा मुखर्जी ललिता वैवाहिक जीवन के संदर्भ में कहती है "स्त्रियों ने अपनी नैतिक और आध्यात्मिक क़द-काठी बढ़ाने पर जितना ज़ोर दिया, पुरुष नहीं दे पाए, इसलिए एक ख़ला-सी उभर आई दोनों के बीच। नया मुल्ला ज़्यादा प्याज खाता है और नवस्वतंत्र व्यक्ति ज़्यादा बोझ उठाता है-स्त्रियाँ पारम्परिक भूमिकाएँ निभाती हुई नई भूमिकाएँ भी निभाने लगीं। पहले की स्त्री तन- मन से सेवा करती थी, पर केवल घर की। नई स्त्री तन-मन-धन से सेवा करती है- और घर-बाहर दोनों की। इसलिए बच्चों-बूढ़ों के बीच जो उनकी साख बढ़ी और पुरुष के अहंकार को चोट लगी तो वह खुद ही एक पिनकू-सा बच्चा बना इधर-उधर छनकता फिरा।"[15] इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि समाज में बदलाव की आवश्यकता है, जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों अपने-अपने गुणों को पहचानें और संतुलन स्थापित करें। ललिता के जीवन का संघर्ष यह बताता है कि स्त्री मुक्ति केवल बाहरी बदलाव नहीं है, बल्कि यह एक गहरा आंतरिक संघर्ष भी है, जो समाज की संरचनाओं और परंपरागत विचारों को चुनौती देता है।

हर सभ्यता के मूल में मनुष्य है। मानवता की रक्षा ही उसका मूलमंत्र होना चाहिए। जब सभ्यता में बर्बरता का प्रभाव अधिक होने लगता है तब एक लेखक का दायित्व होता है समाज को मानवीय मूल्यों को याद दिलाना तथा मनुष्यता को बचाने का मार्ग अग्रसर करना । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए लेखिका ने सूफ़ी भावनाओं का साहारा इस उपन्यास में लिया है। सूफ़ीवाद के विचारों के माध्यम से लेखिका यह संदेश देती हैं कि वास्तविक मुक्ति धर्म, जाति, लिंग, और वर्ग से परे है।"यहाँ सर्वधर्म-समभाव की ज़रूरत पर काफ़ी ज़ोर दिया गया है जिसमें स्वयं शहंशाह की पत्नी 'मलिका' को भी इसके प्रचार-प्रसार में संलग्न दिखाया गया है। कहना न होगा कि आज धार्मिक संकीर्णता जिस तरह बढ़ती चली जा रही है, धार्मिक उदारता और समभाव की भावना की ज़रूरत भी उतनी ही तीव्र होती जा रही है। ईरान की राबिया फकीर का ज़िक्र भी कई बार आता है। सूफ़ी मान्यता से प्रभावित और समाज की सेवा और कल्याण और उसके आध्यात्मिक उत्थान में संलग्न और अपने इस काम के प्रति समर्पित एक भरी-पूरी ज़मात दिखाई पड़ती है, जो अँधेरे में रोशनी की मानिंद हमारे सामने प्रकट हैं"।[16] स्त्रियों की मुक्ति केवल सामाजिक या कानूनी अधिकारों से नहीं, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता से प्राप्त हो सकती है। यह स्वतंत्रता तब प्राप्त होती है जब स्त्री अपने आत्मबोध को जागृत करती है और समाज के बंधनों से मुक्त होकर अपने अस्तित्व को स्वीकार करती है। सूफ़ी विचारधारा इस बात पर ज़ोर देती है कि मुक्ति का मार्ग प्रेम और समानता से होकर गुज़रता है, जहाँ सभी इंसान बराबर हैं और जहाँ किसी प्रकार का भेदभाव या शोषण नहीं है। रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं "इक्कीसवीं सदी का बदहवास इंसान भी जान ले कि कुल आठ सदी पहले उसीका हम बिरादार थे। ऐसा कोई इंसान जो प्रेम से नफ़रत को जीतने का हुनर जानता था; जो तरक्की की बातों के ढोल नहीं पीटता था, तरक्की पसंद खयालों को अपनी ताकत बनाकर अवरोधी ताकतों के सामने तन जाया करता था। अमीर खुसरो का किताब/ इतिहास के पन्नों में होना दरअसल असल ज़िंदगी में अमीर खुसरो जैसे इंसानों के न होने को बहुत गहरे रेखांकित कर देता है"[17] सूफ़ी विचारधारा प्रेम, समता और आध्यात्मिक स्वतंत्रता की बात करती है, जो समाज की संकीर्ण धारणाओं से परे एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष

अनामिका का उपन्यास "आईना साज़"

सभ्यता और स्त्री मुक्ति के परस्पर संबंध को बखूबी दर्शाता है। सभ्यता के हर स्तर पर स्त्रियों ने अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष किया है, चाहे वह मध्यकालीन पितृसत्ता हो या आधुनिक पूँजीवादी समाज। दोनों ही कालखंडों में स्त्री की स्थिति दबाव में रही है।मध्यकाल में धार्मिक और सांस्कृतिक दबावों के कारण और आधुनिक काल में बाज़ार और पूँजीवादी शक्तियों के कारण। सभ्यता का विकास भले ही स्त्रियों के जीवन में कुछ सुधार लाया हो, लेकिन उनके स्वतंत्र अस्तित्व और अस्मिता की प्राप्ति में अभी भी कठिनाइयाँ हैं। अनामिका ने इस रचना के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति में व्याप्त स्त्री-शोषण के महीन धागों को बारीकी से चिह्नित किया है। इस उपन्यास में यह दिखाया है कि किस प्रकार स्त्रियाँ हर युग में पुरुषवादी सोच और समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था का शिकार होती रही हैं। मध्यकाल में ख़ुसरो, पद्मावती, और कायनात जैसे पात्रों के माध्यम से स्त्री जीवन की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति को दर्शाया गया है। वहीं, आधुनिक काल में सपना जैन, ललिता चतुर्वेदी, सरोज किंडो, और श्यामा मुखर्जी जैसे पात्रों के माध्यम से वर्तमान समाज में स्त्रियों के संघर्षों और उनके अधिकारों की लड़ाई को सामने रखने की कोशिश लेखिका द्वारा की गई है। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यास यह समझाने का प्रयास करता है कि स्त्री शोषण का सार्वभौमिक सत्य हर युग में कैसे प्रकट होता है, चाहे वह मध्यकालीन समाज हो या आधुनिक दुनिया। मध्यकालीन और आधुनिक स्त्रियों की स्थितियों के द्वारा लेखिका ने यह दिखाया है कि स्त्री मुक्ति का संघर्ष सभ्यता की जटिल संरचनाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। सभ्यता का स्तर इस बात से मापा जा सकता है कि वह अपने कमज़ोर वर्गों की रक्षा और उत्थान के लिए कितने प्रयास करती है। जब महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाती हैं तब उन्हें प्रताड़ना, अफ़वाह और धमकी का सामना करना पड़ता है। यह एक संकेत है कि समाज को अभी और प्रगति करने की आवश्यकता है। सच्ची सभ्यता का निर्माण तब होता है जब वह हर व्यक्ति को, विशेषकर महिलाओं को, समानता, स्वतंत्रता और गरिमा का अधिकार देती है। यह उपन्यास उस संघर्ष का प्रतीक है जो एक बेहतर और न्यायपूर्ण सभ्यता की ओर कदम बढ़ाने के लिए आवश्यक है।साथ में उपन्यास में सूफ़ी भावनाओं के माध्यम से यह संदेश भी दिया गया है कि चाहे कोई भी युग हो, धर्म, जाति, वर्ग, और लिंग से परे जाकर एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की स्थापना ही वास्तविक मुक्ति का मार्ग हो सकता है। इस प्रकार स्त्री मुक्ति का संघर्ष सभ्यता की जटिल संरचनाओं से परे जाकर उसके आत्मबोध, प्रेम और समता की प्राप्ति से जुड़ा हुआ है। यह संघर्ष तब तक ज़ारी रहेगा, जब तक समाज में स्त्रियों को उनकी असली स्वतंत्रता और समानता प्राप्त नहीं होतीं।

संदर्भ :

1. महादेवी वर्मा, 'प्रतिनिधि गद्य रचनाएँ' ,सं. डॉ. रामजी पाण्डेय,भारतीय ज्ञानपीठ,पृ -सं.275
2. https://samalochan.blogspot.com/2020/02/blog-post_7.html?m=
3. अनामिका : आईनासाज़, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ -39
4. मृणाल पाण्डे : स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2019, पृष्ठ 44
5. अनामिका : आईनासाज़, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ -49
6. अनामिका : आईनासाज़, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ -42
7. के एम मालतीभारतीय परिप्रेक्ष्य :स्त्री विमर्श :, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010,पृ-सं.22
8. आशारानी व्होरा, 'औरत कल,आज और कल', कल्याणी शिक्षा परिषद्, दिल्ली,2005, पृ-सं.18
9. अनामिका : आईनासाज़, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ -49

10.मृणाल पाण्डे : स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,2019,पृष्ठ 46
11.नित्यानंद तिवारी : हिंदुस्तान की नवीनतम सृजनशील परंपरा के पक्ष में, कथादेश, दिल्ली, नवंबर 2022, पृष्ठ 48
12.अनामिका : आईनासाज़, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ -133
13.वही, पृष्ठ -158
14. वही, पृष्ठ -150
15 वही, पृष्ठ -167
16.https://samalochan.blogspot.com/2020/02/blog-post_7.html?m=
17.रोहिणी अग्रवाल : गुलेल के निशाने पर विहंसती प्रेम की बस्ती, साखी अंक 34, उत्तर प्रदेश, जुलाई 20-21, पृष्ठ 73

◆ शोध छात्रा, हिन्दी विभाग,
कोच्चिन विश्वविद्यालय
मो. 8383891234
vineejavijayan122@gmail.com

बेमेतरा जिले में ग्राम स्तर पर प्राप्त जन सुविधाएँ एवं शिशु मर्त्यता: एक भौगोलिक विश्लेषण

◆डॉ. मधु

शोध सारांश - प्रस्तुत अध्ययन बेमेतरा जिले में ग्राम स्तर पर प्राप्त जनसुविधाएँ एवं शिशु मत्र्यता से संबंधित है। अध्ययन क्षेत्र में 4 विकासखंण्डो से 24 गाँवों का यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से चयन किया गया है जिनमें 934 महिलाओं से सूचना एकत्र की गई। क्षेत्र में 54.17 प्रतिहज़ार शिशु मर्त्यता दर है। शिशु मृत्यु दर 36.40 प्रतिहज़ार बालिकाओं का तथा 69.62 प्रतिहज़ार बालकों का है। जिले में उपर्युक्त सुविधाएँ युक्त ग्रामों की तुलना में उपर्युक्त सुविधाएँ नहीं वाले ग्रामों में शिशु मृत्यु अधिक है। चिकित्सा सुविधा ग्रामों में 32.46 एवं चिकित्सा सुविधा से वंचित ग्रामों में 65.74 प्रति हज़ार शिशु मृत्यु दर है। शिशु मृत्यु दर का प्राथमिक स्तर 84.46 प्रति हज़ार है एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर 31.60 प्रति हज़ार है। जहाँ यातायात की सुविधा उपलब्ध है शिशु मृत्यु दर 36.17 प्रति हज़ार है एवं यातायात की सुविधा से वंचित में शिशु मृत्यु दर 74.51 प्रति हज़ार है। बाज़ार की सुविधा उपलब्ध है तो शिशु मृत्यु दर 31.11 प्रति हज़ार है एवं बाज़ार की सुविधा से वंचित है तो शिशु मृत्यु दर 77.98 प्रति हज़ार है। दवाई दुकान की सुविधा उपलब्ध है जहाँ, शिशु मृत्यु दर 31.49 प्रति हज़ार है एवं दवाई दुकान की सुविधा से वंचित ग्रामों में शिशु मृत्यु दर 71.28 प्रति हज़ार है।

शब्द कुंजी - दवाई दुकान, शैक्षणिक संस्थाएँ, प्रतिहज़ार, यातायात।

प्रस्तावना

जनसंख्या संरचना को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक- प्रजननता, मर्त्यता और प्रवास हैं। किसी भी क्षेत्र की जनसंख्या परिवर्तन में मृत्यु का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि शिशु मृत्यु एक ऐसी स्वाभाविक घटना है जो जनसंख्या के आकार घनत्व एवं वितरण को कम करने में प्रत्यक्ष रूप से सहायक है। किसी भी क्षेत्र की मृत्यु वहाँ की जनांकिकी, सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति का सूचक होती है। इसी प्रकार जीवन प्रत्याशा, जननीति एवं जनसंख्या-वृद्धि में मृत्यु का महत्वपूर्ण सक्रिय एवं क्रियात्मक सहयोग होता है। मृत्यु के निर्धारक कारक भिन्न - भिन्न स्थानों में भिन्न - भिन्न होते हैं जो समय के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलते रहते हैं। वर्तमान में मृत्यु निर्धारक

घटकों की प्रकृति में जो परिवर्तन हुए हैं वे जनांकिकी संक्रमण के महत्वपूर्ण अंग है। इस प्रकार मृत्यु की कमी जनसंख्या विकास का सर्वोत्तम सूचक होती है। संपूर्ण भारत में शिशु मृत्यु दर अधिक है। भारत में मृत्यु अल्पपोषण जटिलताओं एवं अंतर्संबंधित कारकों का प्रतिफल है। भारत में अल्पपोषण एवं कुपोषण दोनों ही समस्याएँ हैं। अधिक शिशु मृत्यु दर के कारण भारतीय जनता परिवार नियोजन के स्थायी उपाय को अपनाने से डरती है।

अध्ययन क्षेत्र

छत्तीसगढ़ राज्य का बेमेतरा जिला उत्तर पश्चिम मध्य भाग में स्थित है। इसका विस्तार 21°90' उत्तरी अक्षांश तथा 81°90' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसका क्षेत्रफल 624.98 वर्ग किलोमीटर है। जिले की समुद्र सतह से औसत ऊँचाई 278 मीटर है। जिले का अपवाह तंत्र महानदी अपवाह तंत्र के अंतर्गत आता है। शिवनाथ नदी महानदी की प्रमुख सहायक नदी है। शिवनाथ नदी जिले की प्रमुख नदी है जिसकी प्रमुख सहायक नदियाँ आमनेर, हाप, सुरही और डोंकु हैं। बेमेतरा जिला में 2011 के जनगणनानुसार कुल जनसंख्या 795759 व्यक्ति हैं। 2001 से 2011 के दशक में जिले में जनसंख्या वृद्धि 29.39 प्रतिशत हुई है, जहाँ 279 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या घनत्व है। जिले में प्रति हज़ार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 1002 है। जिले में अनुसूचित जाति 17.16 प्रतिशत तथा अनुसूचित जनजाति 4.07 प्रतिशत है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य बेमेतरा जिले में शिशु मृत्यु दर की स्थिति का आकलन एवं ग्राम स्तर पर प्राप्त जनसुविधाओं के प्रभाव का विश्लेषण करना है।

आँकड़ों के स्रोत एवं विधि तंत्र

प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। आँकड़ों के संकलन के लिए तीन प्रकार की अनुसूचियों का प्रयोग किया गया है। प्रथम-परिवारिक, द्वितीय-व्यक्तिगत एवं तृतीय-ग्राम अनुसूची। इस अध्ययन हेतु बेमेतरा जिले के चार विकासखण्ड से 24 गाँवों का चयन, प्रतिचयन यादृच्छिक विधि से किया गया, जिनमें गाँव की 934 महिलाओं से सूचना ली गई है, जिनके यहाँ गत वर्ष में किसी शिशु का जन्म हुआ हो एवं एक वर्ष से कम उम्र में शिशु की मृत्यु हुई हो। इन महिलाओं से शिशु मृत्यु तथा ग्राम स्तर पर प्राप्त जनसुविधाएँ सम्बन्धी जानकारी एकत्र की गयी है तथा साख्यिकीय विधि के अंतर्गत सहसंबंध गुणांक का प्रयोग किया गया है।

शिशु मृत्यु

शिशु मृत्यु का सम्बन्ध आयु के प्रथम वर्ष में होने वाली मृत्यु से है। यह किसी वर्ष में एक वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं की मृत्यु संख्या और उसी वर्ष में जन्म लिए कुल जीवित शिशुओं की संख्या का अनुपात है, जिसे प्रति हज़ार में व्यक्त किया जाता है।

$$\text{शिशु मृत्यु दर} = \frac{\text{किसी वर्ष में एक वर्ष से कम आयु के शिशुओं की मृत संख्या}}{\text{उसी वर्ष सजीव जीवित जन्मों की कुल संख्या}} \times 1000$$

बेमेतरा जिले में 54.17 प्रति हजार शिशु मृत्यु दर है जो सम्पूर्ण भारत (47 प्रति हजार) एवं छत्तीसगढ़ (42.0 प्रति हजार, एस.आर.एस., 2011) से काफी अधिक है। इस जिले में बालकों से बालिकाओं की शिशु मृत्यु दर कम है। शिशु मृत्यु दर बालिकाओं में 36.40 प्रति हजार तथा बालकों में 69.62 प्रति हज़ार है। इसका प्रमुख कारण जैविकी दृष्टि से शिशु बालिका श्रेष्ठ होती है, जिससे प्रारम्भिक नवजात अवधि में शिशु बालिकाओं के जीवित रहने की संभावना अधिक होती है। बेमेतरा और नवागढ़ विकासखण्ड में प्रारम्भिक नवजात मृत्यु दर (क्रमशः 33.05 और 30.17 प्रति हजार) तथा नवजात मृत्यु दर (क्रमशः 4.13 और 8.62 प्रति हजार) दोनों ही कम हैं। किन्तु साजा विकासखण्ड में प्रारम्भिक नवजात मृत्यु दर अपेक्षाकृत कम (28.98 प्रति हजार) है और नवजातोत्तर मृत्यु दर अधिक (14.49 प्रति हजार) है। इसके विपरीत नवागढ़ विकासखण्ड में

(43.10 प्रति हज़ार) शिशु मृत्यु दर सबसे कम है। (4.31 प्रति हज़ार) नवजातोत्तर मृत्यु दर भी कम है।

साजा और बेरला विकासखण्डों में शिशु मृत्यु दर अधिक है, (क्रमशः 62.80 और 68.29 प्रति हज़ार)। यहाँ पर जनांकिकीय कारकों में विवाह की आयु, जन्म-क्रम और जन्म-अन्तराल में कमी होने से शिशु मृत्यु दर प्रभावित हुआ है।

मृत्यु का कारण

जनांकिकीविदों ने शिशु मृत्यु के कारणों को दो वर्गों में रखा है -

1. अन्तर्जात कारण - अन्तर्जात कारण मूलतः जैव कारण होते हैं, जिनमें अपिरपक्वता (अवधि पूर्व जन्म, जन्म के समय शिशुओं का वज़न 250 ग्राम से कम) जन्म के समय ही विकृति, आन्तरिक अभिघात, जन्म की चोंटें, श्वास में तकलीफ और जीवन के प्रारम्भिक दिनों में व्यवस्थित पालन-पोषण की कमी आदि हैं।
2. बहिर्जात कारण - इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से रखा जाता है रोग, दुर्घटना आदि को। अधिकांश मृत्यु के कई कारण होते हैं, जिनमें से बीमारियाँ सर्वाधिक हैं। बेमेतरा जिले में सबसे अधिक शिशु मृत्यु निमोनिया से (21.44 प्रतिहज़ार) हुई है। अन्य कारणों में पीलिया, दुर्घटना, रक्तदोष, बुखार आदि हैं और शिशु मृत्यु दर 15.80 है। 7.90 प्रति हज़ार शिशु मृत्यु दर श्वास में तकलीफ से है।

ग्राम स्तर पर प्राप्त जन सुविधाएँ एवं शिशु मृत्यु

ग्राम स्तर पर उपलब्ध सुविधाओं का लाभ ग्राम के प्रत्येक परिवार के लिए होता है। ग्राम पर उपलब्ध जन सुविधाओं एवं वातावरण का प्रभाव वहाँ रहने वाले व्यक्तियों के रहन-सहन, खान-पान एवं जीवन स्तर पर पड़ता है। जन सुविधाओं की उपलब्धता क्षेत्र में जहाँ स्वच्छ एवं स्वस्थ वातावरण का निर्माण करती है। इसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव माता एवं नवजात शिशु पर पड़ता है जिस कारण से शिशु मृत्यु दर पर प्रभाव पड़ता है। मूलभूत सुविधाओं के अभाव में ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु मृत्यु दर अधिक होता है। इसका मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी है। ग्राम स्तर पर प्राप्त सुविधाओं में चिकित्सा सुविधा, शैक्षणिक संस्थाएँ, ग्राम से निकटतम नगर की दूरी, यातायात की सुविधा, दवाई दुकान की सुविधा, बाज़ार की सुविधा एवं टेलीफोन की सुविधा प्रमुख हैं।

चिकित्सा सुविधा

चिकित्सा सुविधा, मानव समाज की प्रथम आवश्यकता है, क्योंकि इससे व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। चिकित्सा सुविधा की उपलब्धि और शिशु मृत्यु दर में ऋणात्मक संबंध पाया जाता है। "शिक्षा बिना सुविधाओं के शिशु मृत्यु दर को कम करने में महत्वपूर्ण नहीं होगा" (पंत, 1999)। ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सालय की सुविधा के अंतर्गत प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र एवं उप-स्वास्थ्य केंद्र की व्यवस्था होती है किन्तु यह सुविधा प्रत्येक ग्राम में उपलब्ध नहीं होने की वजह से आपतकाल में व्यक्तियों को स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं मिलतीं, जिससे ऐसे ग्राम मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रमों के लाभ से वंचित होने के कारण मातृ एवं शिशु दोनों की मृत्यु होती है। रजिस्ट्रार जनरल आफ इंडिया (1978) के अनुसार जिन ग्रामों में चिकित्सा सुविधा नहीं है, वहाँ शिशु मृत्यु दर उन ग्रामों की तुलना में अधिक है, जहाँ चिकित्सा-सुविधा है। चिकित्सा-सुविधा शिशु मृत्यु दर को कम करने में सहायक होती है (काल्डवेल, 1979)।

बेमेतरा जिला के चयनित 24 ग्रामों में से 25% ग्रामों में उपस्वास्थ्य केंद्र की सुविधा उपलब्ध है, जहाँ शिशु मृत्यु दर 32.46 प्रति हज़ार है। इसके विपरित 75% ग्रामों में चिकित्सा सुविधा से वंचित है जिसमें शिशु मृत्यु दर 65.74 प्रति हज़ार है। जिला के चयनित चिकित्सा सुविधा से वंचित ग्रामों में शिशु मृत्यु का उच्च दर बेरला विकासखण्ड में 79.13 प्रति हज़ार एवं चिकित्सा सुविधा उपलब्ध में शिशु मृत्यु - न्यून दर नवागढ़ विकासखण्ड में 21.73 प्रति हज़ार

है। उल्लेखनीय है कि नवागढ़ विकासखण्ड में शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधा उन्नत है। इसके विपरित बेरला विकासखण्ड नगर क्षेत्र से दूरस्थ होने के कारण ग्रामीण सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित है, जिसके तहत पारम्परिक चिकित्सा पद्धति का उपयोग अधिक किया जाता है। बेमेतरा जिले में चिकित्सा सुविधा एवं शिशु मृत्यु दर के बीच 0.01 विश्वास के स्तर पर सार्थक सहसंबंध (r= 1.000) पाया गया है।

शैक्षणिक सुविधाएँ

शिक्षा मृत्यु दर को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूप से प्रभावित करती है। जिन ग्रामों में शैक्षणिक संस्थाएँ होती हैं वहाँ साक्षरता का प्रतिशत भी अधिक होता है। राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर शैक्षणिक सुविधा और शिशु मृत्यु दर में विपरीत संबंध होता है। वास्तव में शिक्षा जीवन के कई आधारभूतों से संबधित होती है, जिसका प्रत्यक्ष संबंध शिशु मृत्यु से होता है (गंडोत्रा एवं दास, 1998)। शिशु मृत्यु को प्रभावित करने वाले कारकों में परिवार की शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके लिए गाँव स्तर पर शैक्षणिक संस्थाओं का होना अनिवार्य है।

बेमेतरा जिला के ग्रामों में 54.16% प्राथमिक स्तर, 16.17% माध्यमिक स्तर, 4.17% उच्च माध्यमिक स्तर एवं 25% उच्चतर माध्यमिक स्तर की शैक्षणिक सुविधा उपलब्ध है। यहाँ शिशु मृत्यु दर का प्राथमिक स्तर 84.46 प्रति हज़ार, माध्यमिक स्तर 35.21 प्रति हज़ार, उच्च माध्यमिक स्तर 34.48 प्रति हज़ार एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर 31.60 प्रति हज़ार हैं (सारणी क्रमांक 4)। जिला के चयनित शैक्षणिक सुविधावाले ग्रामों में प्राथमिक स्तर में शिशु मृत्यु - उच्च दर बेरला विकासखण्ड में 90.90 प्रति हज़ार एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर उपलब्ध में शिशु मृत्यु - न्यून दर नवागढ़ विकासखण्ड में 21.73 प्रति हज़ार हैं। उल्लेखनीय है कि अतः शैक्षणिक सुविधाओं के स्तर में वृद्धि होने के साथ शिशु मृत्यु दर में कमी होनी है। नवागढ़ विकासखण्ड में शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाएँ उन्नत हैं। इसके विपरित बेरला विकासखण्ड सामाजिक-आर्थिक विकास में पिछड़े होने के कारण उच्च शैक्षणिक सुविधाओं की कमी है। बेमेतरा जिले में शैक्षणिक सुविधा एवं शिशु मृत्यु दर के बीच 0.01 विश्वास के स्तर पर सार्थक सहसंबंध (r= .886) पाया गया है।

ग्राम से निकटतम नगर की दूरी

नगरों में चिकित्सा सुविधा अपेक्षाकृत अधिक उपलब्ध होती है। अतः नगर से ग्राम की दूरी का शिशु मृत्यु दर पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। ग्राम की दूरी नगर से अधिक होने पर शिशु मृत्यु दर की संभावना अधिक होती है। इसके विपरीत नगर से ग्राम की दूरी कम होने पर निकटतम नगर से चिकित्सा सुविधा प्राप्त होने से शिशु मृत्यु दर की संभावना कम होती है। नगर से अधिक दूरी पर स्थित ग्राम में यातायात के साधन उपलब्ध नहीं हैं तो शिशु मृत्यु दर बढ़ता है। ग्राम नगर से जितनी दूरी पर होगा उतना ही उपलब्ध चिकित्सा सुविधाओं का उपयोग करने में असमर्थ होगा। नगर के पास होने पर शिशु के अतिसार की स्थिति में जीवन रक्षक घोल कम समय में उपलब्ध हो जाता है और शिशु मृत्यु दर को नियंत्रित किया जा सकता है।

बेमेतरा जिला के चयनित ग्रामों में 12.50% ग्रामों से निकटतम नगर की दूरी 5 किमी. से कम होने पर शिशु मृत्यु दर 37.97 प्रति हज़ार है। 41.67% ग्रामों में अपने निकटतम नगर से 5-10 किमी. की दूरी होने पर शिशु मृत्यु दर 42.71 प्रति हज़ार है और 45.83% ग्रामों में अपने निकटतम नगर से दूरी 10 किमी. अधिक होने पर शिशु मृत्यु दर 75.75 प्रति हज़ार है । जिला के चयनित निकटतम नगर की दूरी 5 किमी. से कम होने पर शिशु मृत्यु की न्यून दर (नवागढ़ विकासखण्ड में) 21.73 प्रति हज़ार एवं निकटतम नगर से दूरी 10 किमी. अधिक होने पर शिशु मृत्यु का उच्च दर बेरला विकासखण्ड में 105.26

प्रति हज़ार हैं। (सारणी क्रमांक 6.6)। नगर से ग्रामों की अधिक दूरी ग्रामीण परिवेश के अधिक प्रभाव को प्रदर्शित करता है। वहीं कम दूरी नगर वाले क्षेत्र नगर के अधिक प्रभाव में रहते हैं। उल्लेखनीय है कि नगर की दूरी कम होने से शिशु मृत्यु दर में कमी हुई है। बेमेतरा जिले में निकटतम नगर की दूरी एवं शिशु मृत्यु दर के बीच 0.01 विश्वास के स्तर पर सार्थक सहसंबंध (r= .928) पाया गया है।

यातायात की सुविधा

यातायात के साधन, क्षेत्रों की दूरी को कम करने एवं सुविधाओं को उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे अधिक भूमिका सड़क की होती है। ''ग्रामों में यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध कराकर वहाँ के जीवन स्तर में वृद्धि होने से शिशु मृत्यु दर में भी कमी होती है'' (भट्टाचार्य, 1999)। ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क मार्ग की उपलब्धता एवं बस स्टाप की सुविधा से जनसंपर्क की गति तीव्र हुई है। बस स्टाप वाले गाँव में स्वास्थ्य संबंधी एवं अन्य जन सुविधाएँ समय पर एवं तुरंत प्राप्त होती हैं।

बेमेतरा जिला के चयनित ग्रामों में 41.67% यातायात की सुविधा है एवं 58.33% यातायात की सुविधा से वंचित है। यातायात की सुविधा वाले ग्रामों में शिशु मृत्यु दर 36.17 प्रति हज़ार है एवं यातायात की सुविधा से वंचित ग्रामों में शिशु मृत्यु दर 74.51 प्रति हज़ार है। जिला के चयनित में यातायात की सुविधा उपलब्ध ग्रामों में शिशु मृत्यु-न्यून दर बेमेतरा विकासखण्ड में 27.21 प्रति हज़ार है एवं यातायात की सुविधा से वंचित में शिशु मृत्यु -उच्च दर बेरला विकासखण्ड में 89.10 प्रति हज़ार है। बेमेतरा जिले में यातायात की सुविधा एवं शिशु मृत्यु दर के बीच 0.01 विश्वास के स्तर पर सार्थक सहसंबंध (r= 1.000) पाया गया है।

दवाई दुकान की सुविधा

दवाई दुकान की सुविधा शिशु मृत्यु दर को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में दवाई दुकान की सुविधा बहुत कम होती है। बीमारी की स्थिति में शिशु और माता को सही समय पर दवाइयाँ न मिलने से शिशु मृत्यु दर तथा माता मृत्यु दर दोनों की संभावना अधिक रहती है। छत्तीसगढ़ सरकार की धन्वतरी योजना (2021) के अंतर्गत राज्य के नागरिकों को सस्ते दरों पर दवाइयाँ 24 घंटे उपलब्ध रहती हैं।

बेमेतरा जिला के चयनित ग्रामों में 29.17% दवाई दुकान की सुविधा है एवं 70.83% दवाई दुकान की सुविधा से वंचित है। ग्रामों में दवाई दुकान की सुविधा उपलब्ध है तो शिशु मृत्यु दर 31.49 प्रति हज़ार है एवं दवाई दुकान की सुविधा से वंचित ग्रामों में मृत्यु 71.28 प्रति हज़ार है। जिला के दवाई दुकान की सुविधा उपलब्ध गाँवों में शिशु मृत्यु -न्यून दर (नवागढ विकासखण्ड में) 21.73 प्रति हज़ार एवं दवाई दुकान सुविधा से वंचित गाँवों में शिशु मृत्यु -उच्च दर (बेरला विकासखण्ड) 79.13 प्रति हज़ार हैं। वास्तव में दवाई दुकान वाले ग्राम आर्थिक दृष्टि से विकसित होते हैं। बेमेतरा जिले में दवाई दुकान सुविधा एवं शिशु मृत्यु दर के बीच 0.01 विश्वास के स्तर पर सार्थक सहसंबंध (r= 1.000) पाया गया है।

बाज़ार की सुविधा

ग्रामीण लोग अपनी मूलभूत आवश्यक सामग्री बाज़ारों से प्राप्त करते हैं, परन्तु सभी ग्रामों में बाज़ार की सुविधा उपलब्ध नहीं होती है। बड़े ग्रामों में सप्ताह में दो बार बाज़ार लगता है। ग्रामों में बाज़ार होना समीपवर्ती क्षेत्रों से आर्थिक संपन्नता को इंगित करता है। ग्रामों में बाज़ार की सुविधा होने से दैनिक उपभोग की वस्तुएँ जैसे हरी सब्जियाँ लोग आसानी से खरीद सकते हैं जो माता के स्वास्थ्य को लाभदायक है।

बेमेतरा जिला के चयनित ग्रामों में 37.50% बाज़ार की सुविधावाले हैं एवं 62.50% बाज़ार की सुविधा से वंचित है। बाज़ार की सुविधा वाले गाँवों में शिशु मृत्यु दर 31.11 प्रति हज़ार है एवं बाज़ार की

सुविधा से वंचित गाँवों में शिशु मृत्यु दर 77.98 प्रति हज़ार है । जिला के चयनित ग्रामों में बाज़ार की सुविधा उपलब्ध में शिशु मृत्यु का न्यून दर (नवागढ़ विकासखण्ड) 21.73 प्रति हज़ार एवं बाज़ार की सुविधा से वंचित ग्रामों में शिशु मृत्यु का उच्च दर (बेरला विकासखण्ड) में 90.90 प्रति हज़ार प्राप्त हुआ। उल्लेखनीय है कि जिन ग्रामों में बाज़ार लगता है वे ग्राम निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों के लिए सेवा के केन्द्र होते हैं। इससे इन ग्रामों में यातायात के साधन, शैक्षणिक संस्थाएँ, बिजली की उपलब्धता इत्यादि सुविधाएँ भी अपेक्षाकृत उच्च स्तर की होती हैं। इससे शिशु मृत्यु दर में अपेक्षाकृत कमी होती है। बेमेतरा जिले में बाज़ार की सुविधा एवं शिशु मृत्यु दर के बीच 0.01 विश्वास के स्तर पर सार्थक सहसंबंध (r= 1.000) पाया गया है।

टेलीफोन की सुविधा

मोबाइल की सुविधा से भी शिशु मृत्यु दर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। मोबाइल के माध्यम से प्रसव के समय या शिशु की बीमारी की स्थिति में डाक्टर को तुरंत बुलाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में शिशु मृत्यु की संभावना कम होती है। हर घर में मोबाइल की सुविधा मिलती है। संचार क्रांति के तहत गरीबों को फ्री मोबाइल की सुविधा प्रदान की गई है।

बेमेतरा जिले में 39.94% परिवारों में स्वयं मोबाइल की सुविधा है तथा 60.06% परिवारों में सरकारी मोबाइल की सुविधा है। मोबाइल की सुविधा स्वयं वाले परिवारों में 21.91 प्रति हज़ार शिशु मृत्यु दर तथा 76.77 प्रति हज़ार शिशु मृत्यु दर सरकारी मोबाइल की सुविधा वाले परिवारों में है। स्वयं मोबाइल की सुविधा में मृत्यु की उच्च दर साजा विकासखण्ड में 25.97 प्रति हज़ार है एवं न्यूनतम दर बेमेतरा विकासखण्ड में 18.51 प्रति हज़ार है। इसके विपरित सरकारी मोबाइल की सुविधा वाले परिवारों में मृत्यु का उच्च दर बेरला विकासखण्ड में 96.00 प्रति हज़ार एवं न्यूनतम दर नवागढ़ में है। मोबाइल की सुविधा में मृत्यु -उच्च दर बेरला विकासखण्ड में 68.29 प्रति हज़ार है एवं न्यूनतम दर नवागढ़ विकासखण्ड में 60.60 प्रति हजार है।

शिशु मृत्यु दर

1. उच्च मृत्युः- (> 65%) इसके अन्तर्गत बेरला विकासखण्ड में मृत्यु दर >65% से अधिक है। इसका मुख्य कारण स्वास्थ्य सुविधाओं में कमी, शिक्षा गुणवत्ता में कमी, निम्न आय का होना एवं जोत का आकार छोटा होना है।

2. मध्यम मृत्यु (60 - 65%):- इसके अन्तर्गत साजा विकासखण्ड है, जिसमें 60 से 65% है। साजा विकासखण्ड में रुढ़िवादी सोच, लोगों में जागरुकता का अभाव, माता-पिता कृषि कार्य में संलग्न है।

3. निम्न मृत्यु (< 60%) :- इसके अन्तर्गत दो विकासखण्ड- बेमेतरा एवं नवागढ़ विकासखण्ड- शामिल हैं। मृत्यु दर < 60% है, जिसके कारण स्वास्थ्य सुविधाओं की अधिकता, जीवन स्तर का उच्च होना, शिक्षा की अधिकता, उच्च आय का होना एवं जोत का आकार बड़ा होना आदि हैं ।

निष्कर्ष

बेमेतरा जिले में शिशु मृत्यु दर बहुत अधिक है, शिशु मृत्यु दर को कई कारक प्रभावित करते है। शिशु मृत्यु दर को प्रभावित करने वाले कारकों में चिकित्सा एवं यातायात की सुविधाएँ प्रमुख हैं। जिले के ग्रामीण क्षेत्र में शिशु मृत्यु दर को कम करने के लिए ग्रामीण स्तर पर चिकित्सा सुविधा, शिक्षा सुविधा, मातृत्व एवं शिशु कल्याण संबंधी योजनाओं का क्रियान्वयन, ग्रामीण जागरूकता अभियानों का संवर्धन आदि अति आवश्यक हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु मृत्यु दर कम करने के लिए सुझाव है कि धन्वन्तरी योजना का क्रियान्वयन सिर्फ विकासखण्ड मुख्यालय में है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में इसका पूर्ण लाभ नहीं मिल पा रहा है। अतः इसका विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में किया जाना होगा। ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को इसकी जागरूक जानकारी

देना अति आवश्यक है। जो भी चिकित्सालय सुविधाएँ हैं, उनके लिए भवन निर्माण करवाना भी ज़रूरी है।

सन्दर्भ सूची

1. Bhattacharya and C. Prabir (1999) : "Socio - Economic Determination of Early Childhood Mortality : A Study of Three Indian State", *Demography India*, Vol.28, No.1, pp. 47-63.

2. Coldwell, J. C. (1979) : "Education as a Factor in Mortality Decline : An Examination of Nigerian Data", *Population Studies,* Vol.33, No.3 pp. 395- 413.

3. Gandotra, M. M. And N. Das (1988) : *Infant Mortility and its Causes*, Himalays Publishing House. Bombay.

4. Madhu and Tike singh. 2022, “bemetara jile ke gramin chetra me jajankikiy karak avam shisu martayata : ek ghavgolik adhyan”, uttar Pradesh geographical journal Kanpur vol.27, pp 166-181.

5. Madhu and Tike singh (2024) bemetara jile me Arthik karak avam gramin shisu martayata : ek ghavgolik adhyan, keralay joyti journal] vol. 3] issue- 61 june. pp .42-46.

6. Madhu,(2024) : Impact Of Health Facilities On Infant Mortaly In Bemetara District : A Geographical Analysis, UnPublishing. Ptrsu. Raipur.

7. Pant, P.D. (1999) : "Effect of Education and Household Characteristics on Infant and Child Mortality in Urban Napal", *Journal of Biosocial Science*, Vol.23, pp. 437-443.

8. Registrar Genral of India (1978) : *Samples Registration Bulletin*, Vol.31, Officer of the Registrar General of India, New Delhi.

9. http://yojanalabh.com/cg -shri -dhanwantri -dawa- yojana/#

10. शर्मा, सरला (2004): दक्षिण महानदी बेसिन में ग्रामीण शिशु मत्र्यता शोध, परियोजना पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

◆अतिथि व्याख्याता,
स्वर्गीय दौलत राम शर्मा
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कसडोल, बलौदा बाज़ार, छत्तीसगढ़।
मो. 9340074843,9165523259
ई.मेल- drmadhu0808@gmail.com

रंगमंच सम्राट ‘बालगंधर्व’

◆ डॉ. प्रियंका

सार: रंगमंच के पटल का सूर्य...सम्पूर्ण जीवन रंगमंच को समर्पित...सदी का महान कलाकार ‘बालगंधर्व’...अभिराम भडकमकर द्वारा रचित ‘बालगंधर्व’ एक अनोखी औपन्यासिक कृति है। रंगमंच पर एक स्त्री नट कलाकार के सम्पूर्ण जीवन का सजीव चित्रण लेखक ने गहन शोध एवं विश्लेषण-विवेचन के आधार पर किया है। बाल गंगाधर तिलक का दिया नाम है ‘बालगंधर्व’। उन्होंने लगभग 27 नाटकों में अभिनय किया एवं ‘मानापमान’ में 54 गाने गाए। भामिनी, रुक्मिणी, सिंधू, मेनका, द्रौपदी आदि स्त्री पात्रों के मंचन के दौरान अभिनय ही नहीं वरन उन्हें जिला दिया। अपने ही समय में स्त्री भूमिका कर उन्होंने वह मुकाम अर्जित किया कि उस समय के जवान युवक स्त्री पोशाकें पहनकर गंधर्व की तरह अपनी तस्वीरें खिंचवाते थे और स्वयं को गंधर्व की तरह देख धनी पाते थे।

बीज शब्द: मराठी मंचन, सौभद्र, प्रेक्षाग्रह, जनाना किरदार, गौहर बाई, पृथ्वीराज कपूर, संगीत नाटक अकादमी।

'बालगंधर्व' उर्फ नारायणराव के लिए रंगमंच की पृष्ठभूमि तैयार करने का कार्य उनके जन्म से पूर्व मराठी रंगमंच का आस्वादन लेने गए एक नौजवान ने किया था, जिसे मराठी नाटक में असंतुष्टि एवं बेचैनी का अनुभव हुआ था-"ये काहे का सूत्रधार, ये तो कथावाचक है। गर्दन हिलाता हुआ वह खुद से ही बोला...नाटक का कीर्तन बना डाला है इन लोगों ने। सूत्रधार के चंगुल से नाटक को मुक्त करना होगा। इस नाटक में दिल नहीं लगता।"[1] मराठी नाटक से असंतुष्टि अनुभव करनेवाला नौजवान बलवन्त पांडुरंग उर्फ अण्णासाहब किर्लोसकर थे, जिन्होंने तत्कालीन मराठी मंचन से असन्तुष्ट होते हुए साथियों के साथ मिलकर स्वयं रचित एवं निर्देशित नाटक 'संगीत शाकुन्तल' का मंचन किया। नाटक मंचन की समाप्ति पर अण्णा मंच की धूल भभूत की तरह अपने माथे पर लगाते हुए बोले-"हे माँ रंगदेवता, आज हमने तुम्हें कथावाचक के चंगुल से मुक्त कर दिया।"[2] यहीं से मराठी नाटक में मंचन के समय धूप जलाने की प्रथा हमेशा के लिए चल पड़ी। उन्होंने एक अलिखित आचरण संहिता भी रंगमंच को प्रदान की-"मंच पर जैसे हम यह सावधानी बरतते हैं कि शकुन्तला का पल्लू ढले नहीं, उसी तरह बाहर भी हमें सावधानी बरतनी होगी। बुरी लतें, अनुचित आचरण को हमें त्यागना होगा।"[3] 'संगीत शाकुन्तल' की सफलता के पश्चात किर्लोस्कर कंपनी से 'सौभद्र', 'रामराज्यवियोग' जैसे नाटक मंचित होते रहे। उस ज़माने में स्त्रियाँ नाटक देखने जाएँ ऐसा रिवाज़ नहीं था, लेकिन 18 नवंबर, 1882 किर्लोस्कर कंपनी के नाटक 'सौभद्र'में सुभद्रा की भूमिका में भाऊराव को देखकर प्रत्येक दर्शक उनके अभिनय और कंठ की प्रशंसा करते हुए रंगमंच से बाहर निकला। प्रेम से भाऊराव 'भावड़िया' कहलाने लगे। उस समय थियेटर में नाटक देखने केवल वैश्याएँ जाया करती थीं। स्त्रियों ने अण्णा से आग्रह किया कि हमारे पति जिसके प्रभाव में हैं उन भावड़िया का नाटक हम भी देखेंगे। अण्णा विशाल हृदय तो थे ही, साथ ही उनके पास दूरदृष्टि भी थी। यद्यपि कुलीन स्त्रियों के प्रवेश के लिए समय था फिर भी केवल उन्हीं के लिए सौभद्र का मंचन होने लगा। अण्णासाहब ने अपने नाटक सभी के लिए स्वतंत्र किए-"मैं अपने सारे नाटक सभी के लिए आज़ाद किए देता हूँ। कोई भी उनका मंचन कर सकता है।"4 अण्णासाहब किर्लोसकर कंपनी का सूत्र भावड़िया, किंजवडेकर और मोरोबा जैसे मज़बूत कलाकारों को सौंपकर नवंबर 1895 को इस दुनिया से विदा हुए। कुछ वर्षों पश्चात 13 फरवरी, 1901 को भाऊराव की लंबी बीमारी के पश्चात मृत्यु हुई। इस तरह किर्लोस्कर कंपनी के दो मज़बूत कंधों का चला जाना कंपनी के भाग्य का रूठ जाना जैसा ही था। उस समय किर्लोस्कर कंपनी शंकरराव संभाल रहे थे, जिन्हें यह ज्ञात नहीं था कि कंपनी के भाग्योदय स्वरूप 26 जून,1988 को नागठोणे गाँव, जिला सतारा में नारायणराव उर्फ रंगमच सम्राट 'बालगंधर्व' इस धरा पर अवतरित हो चुके हैं। इनके पिता श्रीपादराव कुशल सितारवादक एवं माँ अन्नपूर्णाबाई गृहस्थी को संभालती थीं। घर में माँ का फैसला अंतिम फैसला होता था। गंधर्व ने छोटी अवस्था में महबूब खाँ से सीखे गायन की सुगमता पर अधिक बल देते थे। कुछ समय पश्चात् वे पुणे में चाचा यशवंत के पास आए, जो केसरी अखबार के प्रबंधक विभाग में कार्यरत थे। इस अखबार के मुख्य प्रबंधक लोकमान्य तिलक थे। चाचा ने 'केसरी' के कार्यालय में नारायण के संगीत कार्यक्रम का प्रबंध करवा दिया। नारायण के गीत के बोल 'हरवा मोरा देव बँधावा' तिलक मंत्रमुग्ध सुनते हुए कह उठे-"अरे,यह तो 'बालगंधर्व' है।"[5] यही शब्द इतिहास के पन्नों पर नारायणराव को 'बालगंधर्व' के नाम से दर्ज करते हैं।

महमूद खाँ के पश्चात् गुरु तहारबादकर, कोल्हापुर में गुरु अपय्य से संगीत सीखा। उस समय कोल्हापुर में छत्रपति शाहू महाराज का राज था। एक बार गुरु अपय्य ने महाराज के कानों में बात डाल दी कि स्वयं लोकमान्य द्वारा प्रशंसित लड़का कोल्हापुर में गान सीख रहा है। शाहू महाराज नारायण का गान सुनकर प्रसन्न हुए। नारायण के दाहिने कान की तकलीफ का पता चलते ही महाराज चिकित्सा प्रबंध के लिए किर्लोस्कर कंपनी की ओर उन्मुख हुए। यह वही कंपनी थी जिसने नारायण का गीत सुनकर टुटमुँहा घड़ा कहा था, अब यहीं गुरु देवलजी के कड़े अनुशासन में नारायण का अभ्यास शुरू हुआ। बाद में, गणपतराव बोडसजो देवलजी के ही शिष्य थे, उन्होंने

नारायण को अभिनय एवं गायकी की शिक्षा प्रदान की। नारायण का कंठ मधुर था, लेकिन घर की आर्थिक हालत ठीक न होने के कारण कम उम्र में ही रंगमंच पर स्त्री नट के रूप में अभिनय करना शुरू किया। "उनकी आवाज़ जवार की तरह दानेदार थी। इस जवारदार आवाज़ के साथ-साथ बेहद लचीला कंठ, दानेदार तान। ताल और लय का जन्मजात मिश्रण और कंठ में कुछ ऐसा प्यारा कंपन मानो किसी लड़की के कानों का झुमका।"[6] संगीत साधना में साँस पर नियंत्रण, एक राग से दूसरे राग में स्वतः प्रवेश, महफिली आनंद की सुखद अनुभूति नारायण के गायन में थी। 1905,गुरुद्वादशी के दिन नारायण का किर्लोस्कर में प्रवेश पक्का हो गया। तत्कालीन समाज में स्त्री नट को सम्मान की नजर से नहीं देखा जाता था, जिसके विवाह में भी बाधा उत्पन्न होती थी- "नौटंकिया को कोई लड़की देगा, यह संभव नहीं था। रंगमंच पर राजा का रोब झाड़नेवाले नट को समाज में सम्मानजनक स्थान नहीं यह विचित्र बात थी। रंगमंच की चकाचौंथ का अंधेरा नट की ज़िंदगी में भी उसका साथी होता है। समाज को कला चाहिए, कलाकार नहीं।"[7] इसी कारणवश, नारायण की माँ को बेटे के विवाह की चिंता सताने लगी, जिसका भार शंकरराव ने अपने कंधों पर लिया। 1907 में बड़े ठाठ से पारगांव की लक्ष्मी से नारायण का विवाह हुआ।

तत्कालीन समाज में सांस्कृतिक-राजनैतिक जीवन में काकासाहब खाडिलकर एक पितामह हस्ती थे, जिन्होंने गंधर्व के लिए 'संगीत मानापमान' नाटक लिखा, जिसके मंचन के समय बेटी इंदु की मृत्यु की खबर मिलने के पश्चात् भी नाटक रद्द नहीं किया-"नहीं नाना, यह दुख नारायण का है। व्यक्तिगत। उसकी जलन भामिनी क्यों सहे? अपने दुर्भाग्य की आंच मैं भामिनी पर नहीं पड़ने दूंगा...मंचन होगा...।"[8] इस प्रस्तुति में गंधर्व ने 'नाही मी बोलत नाथा' पंक्ति अलग-अलग पद्धति से गाई। उन्होंने रंगमंच की साधना धर्म समझकर की, वे उसके मध्य व्यक्तिगत जीवन को कभी नहीं लाए-"बुखार शरीर का हो या मन का, नाटकवाला एक बार चेहरे पर रंग लगा ले, तो सबकुछ अलग रखकर खड़ा हो जाता है जुनून।"[9]

शंकरराव में स्वामित्व भाव अधिक होने के कारण गणपतराव बोडस, गंधर्व, बालासाहब पंडित ने किर्लोस्कर कंपनी से अलग नई कंपनी 'गंधर्व नाटक मंडली' की स्थापना की। मानापमान, विदयाहरण, शारदा, मूकनायक, शापसंभ्रम, गुप्तमंजूष आदि नाटकों के अधिकार कंपनी को प्राप्त हुए। नाटक का मुख्य पर्दा विख्यात गायिका केसरबाई की बैठक का राधाकृष्ण का तैलचित्र चुना गया। गंधर्व के नाम से कंपनी का प्रलोभन गंधर्व के सिर कभी नहीं चढ़ सका, वे तो अभ्यास के दौरान स्वयं को पूरी तरह से काटकर अभिनयरूपी मठ में प्रवेश कर जाते थे। उनका सूत्र था-"जेब में पैसे न हों तो भी कलाकार को उसकी फिक्र नहीं करनी चाहिए। जो करना वह शानदार और परिपूर्ण होना चाहिए।"[10] 5 जुलाई 1913 को शुभ मुहूर्त में शाम साढ़े पाँच बजे 'गंधर्व नाटक मंडली' का नाम भारतीय संगीत नाटक के इतिहास में गंधर्व युग के नाम से दर्ज हुआ। 3 सितंबर,1913 को गंधर्व कंपनी का पहला नाटक श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर द्वारा रचित 'मूकनायक' का मंचन मुंबई के एल्फिंस्टन थियेटर में हुआ।

दर्शकों में गंधर्व के अभिनय के प्रति इतना अधिक खिंचाव था कि वे लाडू की हथेली पर टिकट के लिए 15 रुपए रख देते थे, बाज़ार में गंधर्व की टोपी की तरह दुकानदार टोपी बेचकर लाभ प्राप्त करते थे। वे पूरे भारत के फैशन आइकॉन हो चुके थे। "सुना है, रात के मंचन में गंधर्व जो कपड़े पहनते, वे दूसरे दिन से पूरी मुंबई शहर में दिखाई देने लगते हैं।"[11] मंचन से पूर्व एक बड़ा प्याला दूध पीना गंधर्व की आदत थी। वे दूध एवं बर्फ के पानी से नहाते थे। विग बिलायत से आते थे। आभूषण सोने के पहनते थे। इत्र के इतने शौकीन कि अपनी साड़ियों को इत्र में डूबा डालते थे। इस कंपनी के राजसी भोजन की चर्चाएँ भी खूब होती थीं। उल्लिखित ब्योरे से गंधर्व की विलासी प्रवृति का आभास मिलता है, लेकिन यह भी विचारणीय है कि गंधर्व ने स्वयं के लिए विलासिता का उपयोग नहीं किया, वे तो मात्र उस दर्शक के मन को सुकून देना चाहते थे जो ज़िम्मेदारियों को निभाता हुआ कुछ क्षणों के सुखद अनुभव के लिए नाटक देखने के लिए आता है।

उनके जीवन में दुख सदैव संकट के साथ आया। देवल गुरुजी द्वारा अपने ही नाटक 'फाल्गुन राव' का रूपांतरित नाटक 'संगीत संशयकल्लोल' के

अभ्यास के दौरान गंधर्व कहते हैं-"सफलता की हर सीढ़ी पर किसी न किसी को गँवाता हुआ आया हूँ मैं। अब किसकी बारी?"[12] इस बार उन्होंने गुरु देवलजी को गँवाया। काकासाहब ने 'स्वयंवर' नाटक की रचना की। यह नाटक रुक्मिणी के स्वयंवर पर केंद्रित था, इसमें रुक्मिणी की भूमिका गंधर्व ने निभाई। इसमें संगीत प्रधान था, जिसके लिए भास्कर बोवा ने गंधर्व से गौहरजान, मौझिद्दी खान, अल्लादियाँ खान आदि कलाकारों की स्वर-मुद्रिकाएँ, ताने, गिटकरी का अभ्यास करने को कहा। संगीत की दुनिया की नामचीन हस्ती अल्लादियाँ खान साहब क्रोधावस्था में गंधर्व का नाटक देखने के लिए आये, क्योंकि कुछ लोगों ने उन्हें बताया कि भास्कर बोवा ने उनकी चीज़ों का गलत इस्तेमाल कर नौटंकिया से गँवाया है। किन्तु गंधर्व का गीत सुनकर अल्लादियाँ खान साहब की प्रतिक्रिया कुछ इस तरह व्यक्त हुई-"भास्कर भैया, कमाल कर दिया। कहाँ से पैदा किया ये तानसेन आपने? यमन, भूप, बिहाग तो इसके गले से ऐसे बरसते हैं...मानो आषाढ़ की पहली बारिश...और वह क्या था...मम सुखाचा ढेब...वाह! क्या बात है। वह तो हमारी जायदाद पर डाका डालकर ही निकाला है आपने। मगर भास्कर भैया...आज मैंने महसूस किया, इतने सालों तक गाया हमने इस बंदिश को पर सब बेकार। उसका असली रंग आज देखा है हमने। आज उसका असली रूप जाना।"[13] 'स्वयंवर' नाटक में गंधर्व द्वारा अभिनीत रुक्मिणी की भूमिका एवं संगीत इतना असरदार था कि स्वयं भास्कर बोवा कहते हैं-"यह सूर्य आज अपने साथ नया युग-गंधर्व युग- लेकर आया है। अब स्वयंवर से शुरू हुआ है गंधर्व युग।"[14] गडकरी द्वारा रचित 'एकच प्याला' में सिंधु के किरदार से उन्हें पत्नी लक्ष्मी और सम्पूर्ण भारतीय स्त्री का मानस अनुभूत हुआ। गंधर्व उस समय की मशहूर नर्तकी एवं गायिका सुंदराबाई को अपनी बहन मानते थे। उन्होंने 'एकच प्याला' के संगीत को सुंदराबाई जी से लिया। "बाई जी गायन और नर्तन दोनों में निपुण। नाचते-नाचते सम पर आते ही ताली बजाती। पर ताली सीधी नहीं, बल्कि दोनों ऊपर उठे हाथों की जाली बनाकर और हथेलियों को परस्पर टकराकर ताली बजाना। सुंदराबाई की ताली पूरे महाराष्ट्र में गूँज रही थी।"[15] एक तरफ 'एकच प्याला' की सफलता, दूसरी ओर गडकरी जी के निधन का समाचार। 'एकच प्याला' में सिंधु के अभिनय ने ही गंधर्व को श्रेष्ठ नट की उपाधि प्रदान की।

गंधर्व के लिए नाटक मात्र दर्शकों को मनोरंजित करने के लिए ही नहीं था, अपितु उसमें समाज को जागृत एवं देश के प्रति कर्तव्य भाव निहित था। 21 वर्षीय गंधर्व से नानासाहब जोगलेकर कहते हैं-"नारायण वे स्वराज्य के लिए लड़ रहे हैं और हम उसे सुराज्य बनाने के लिए कोशिश कर रहे हैं। अनंत कान्हेरे का शस्त्र है पिस्तौल और हमारा-नाटक।"[16] मराठी रंगमंच के सूर्य और चंद्र अर्थात् गंधर्व और केशवराव ने गांधी द्वारा चलाए जानेवाले 'तिलक स्वराज फंड' के लिए एक साथ मिलकर नाटक 'मानापमान' एवं 'सौभद्र'का मंचन किया। कुछ समय पश्चात् यह खबर भी प्राप्त हुई कि विषमज्वर के कारण केशवराव नहीं रहे।

गंधर्व के बालासाहब पंडित पर अंधविश्वास का नतीजा था कि उनके कंधों पर एक लाख अस्सी हज़ार के कर्ज का बोझ पड़ा। दर्शकों ने आदर एवं प्रेमभाव स्वरूप 2 लाख रुपयों की राशि गंधर्व के समक्ष रखी, जिसपर वे कहते हैं-"चुकाएंगे...नाटक खेलकर, इन रसिकों के बलबूते पर ही चुकाएंगे। पुरुषार्थी लोग कहते हैं, हमने चूड़ियाँ नहीं पहन रखी हैं। पर आज आपका यह नारायण इस भरी सभा में प्रतिज्ञा करता है कि मैं यह कर्ज चुकाऊँगा। चूड़ियाँ पहनकर ही यह पुरुषार्थ कर दिखाऊँगा।"[17] 1 जनवरी,1928 को उन्होंने तीन लाख नौ हज़ार का कर्ज चुकाया, वहीं नियति ने उनसे बेटी कमला का अंतिम संस्कार कराया। उसी रात 'मृच्छकटिकम्' का मंचन 'मानापमान' की तरह ज़ारी रहा। नियतिवश बेटी सरोजनी को ससुराल विदा करने के पश्चात अपने नवजात बेटे को दफन करने के लिए बाध्य हुए। वे शमशान से वैराग्य लेकर लौटे-"रंगमंच का गंधर्व असली, बाहर का गंधर्व बस आभास...। रंगमंच का गंधर्व ही सत्य, बाकी सब माया...मिथ्या...।"[18]

33 वर्षीय गंधर्व को आभास होने लगा कि स्त्री किरदारों को निभाने की अब उम्र ढल चुकी है, उन्होंने श्रीपाद कृष्ण के नाटक 'वीरतनय' में शूरसेन की भूमिका निभाते हुए स्वयं से कहा-"मैं इन कपड़ों में पराए की तरह विचरता रहा हूँ। और स्त्रीवेश...ऐसा

लगता है, मानो त्वचा की तरह जन्म के पहले से वह मेरे साथ है।"[19]

गंधर्व जिसके विपक्षी हुए मानो नियति ने उन्हें उसी की शरण में जाने को विवश किया। गंधर्व युग का दर्शक संगीत-अभिनय की समझ रखता था, किन्तु सिनेमा के दौर ने रंगमंच को प्रभावित किया। निर्देशक सरपोतदार की फिल्म के समारोह में अध्यक्षीय भाषण में गंधर्व कहते हैं-"गुस्सा मत होइए, पर दिल से कहता हूँ, नहीं रास आई यह फिल्म मुझे। बिल्कुल नहीं भाई।"[20] वहीं, अभिनेत्री दुर्गा खोटे यानी मुगल-ए-आजम की जोधाबाई के बारे में 'स्त्रियाँ और रंगमंच' विषय पर बोलते हुए आलोचना की। वे मानो भारतीय स्त्री को परंपरागत स्वरूप में देख रहे थे। सिनेमा का रंगमंच पर यह असर पड़ा कि एवला में नाटक के समय प्रेक्षागृह में मात्र 6 ही दर्शक थे। भले वे सिनेमा की निंदा कर रहे हों किन्तु नियति से मज़बूर और कर्ज से डूबे 46 वर्षीय गंधर्व वी.शांताराम की फिल्मों में काम करने के प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं। "परदे पर चित्र अंकित हुआ, बालगंधर्व-प्रभात चित्र प्रस्तुत...धर्मात्मा!"[21] सिनेमगृहों में सन्नाटा रहा। अनुबंध समाप्ति दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर कर सिनेमा से सदैव के लिए पीठ फेरी।

गृहस्थ, मर्यादित गंधर्व के जीवन में बड़ा फेर होने जा रहा था। तबला वादक हुसैन खाँ की पुत्री गौहरबाई सिनेमा में किस्मत आजमाने के लिए चापेकर की कंपनी 'नाट्यादर्श संगीत नाटक मंडली' मुंबई में पैर रखती है। उसकी गायकी पर गंधर्व गायकी का प्रभाव था। धीरे-धीरे वह शारदा सिनेटोन के रासविलास में गायिका एवं नायिका रूपों में चमक उठी, बाद में नवभारत, जयभारत, जयदेव सिनेटोन, इंडियन लिबर्टी पिक्चर्स जैसी कंपनियों में भी काम किया। वह चापेकर की समझ से बाहर थी-"फिल्म जगत में जहाँ मौका मिले, वहाँ रासक्रीड़ा रचानेवाली गौहर गंधर्व के मामले में मीरा की तरह समर्पित कैसे हो जाती है?"[22] गौहर के मन में दबी इच्छा- गंधर्व कंपनी में प्रवेश की-13 मार्च,1934 से पूरा होना शुरू हुआ। स्वयं गंधर्व की माँ अन्नापूर्णाबाई ने गौहर की गायकी के कार्यक्रम का आयोजन किया, बाद में गंधर्व भी रिकॉर्ड सुन प्रसन्न हुए। वे कंपनी के किसी भी सदस्य से सलाह किए बगैर गौहर को अपने साथ नाटक में अभिनय करने की अनुमति देते हैं। गौहर ने 'मृच्छकटिकम्' की वसंतसेना, 'मानापमान' की भामिनी आदि की भूमिका मंच पर गंधर्व के साथ निभाई। किन्तु गंधर्व के नाटकों में गौहर का अभिनय दर्शकों को "पान के साथ जुगाली का विषय"[23] जैसा ही लगा। गौहर ने गंधर्व के निजी जीवन में प्रवेश किया, परिणामस्वरूप पत्नी लक्ष्मी ने घर छोड़ा और उसकी मृत्यु के बाद गौहर ने गंधर्व से विवाह किया। जो गौहर एक साधिका बनने आई थी, गंधर्व उसके लिए गुरु समान थे, लेकिन वह सौतिया डाह के फेरे में पड़ गई, वहीं, गंधर्व का गौहर को नाटकों में लाने का प्रयोजन कंपनी को कर्ज से मुक्त कराना था, लेकिन कंपनी दिवाला हो चली थी।

जीवन के अंतिम पड़ाव पर गंधर्व के पास धन का अभाव भले हो, किन्तु ईश्वरीय प्रतिभा का वैभव उनके पास था। पृथ्वीराज कपूर ने 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' के लिए गंधर्व का नाम प्रस्तावित किया था, जिसे बहुमत से स्वीकृति मिली। पंडित नेहरू के निमंत्रण पर दिल्ली में उनकी गायकी डेढ़ घंटे सुनकर गांधी उन्हें लिखते हैं-'गाना बहुत अच्छा है।' उसी दिन शाम अंबेड्कर के बंगले पर उन्होंने भजन, नाटयगीत, राग आदि शैलियों का भिन्न-भिन्न रूपों में गायन करते हुए आखिर में एक अभंग 'जोहर माई-बाप जोहर...'गाया, जिसे सुन अंबेड्कर भाव विह्वल हो उठे। वापस मुंबई आकर वे छोटे-छोटे गाँवों, मंचों पर शो करते रहे, इन्हीं से पैसे जोड़कर गौहर ने एशिया मंजिल पर घर खरीदा, लेकिन सरकार ने उसे बेनामी जायदाद घोषित कर दिया, गौहर ने कचहरियों में चक्कर लगाना शुरू किया। वे अपने ही घर में 80 रुपए महीने देकर रहने के लिए विवश थे। इसी बीच, 65 वर्षीय गंधर्व के एक पैर में लकवा मार गया। कुछ समय बड़ौदा में डॉ. कीर्तने की निगरानी में आराम करते हुए वे वापस गौहर के साथ मुंबई आए, और इस हालत में भी काम करने को विवश हुए। गौहर के शब्दों में-"ज़्यादा दुखने लगे तो बैठकर गाएँगे। लोगों को उनका गाना ही तो सुनना होता है! लीजिए, शो ले लीजिए।"24 लगभग 3 वर्ष यानी 1955 तक वे परेशानी, उपेक्षा, लापरवाही सहते हुए शो करते रहे। वे इतनी तकलीफ में थे कि विदर्भ में शो

करते हुए दूसरे पैर की भी शक्ति चले जाने पर ज़मीन में ढह गए-"दर्शकों में कोलाहल मच गया। नेपथ्य में भी हलचल मच गई। गंधर्व ने अपने बचे हुए संवाद शुरू किए। उनकी वह थकी-हारी, गहरी, क्षीण आवाज़...। लेकिन वे तड़प के साथ सिंधु के संवाद बोले जा रहे थे और यह देखकर दर्शकों के हृदय छलनी हो रहे थे। उनका रंगमंच का सम्राट अब बुढ़ापे के कारण असहाय हो गया था।"[25] ऐसी अपाहिज स्थिति में भी महाराष्ट्र के पारगांव से गंधर्व के गाने का न्योता गौहर स्वीकारती है। वहाँ से वह माणगांव के कलेक्टर द्वारा गंधर्व को मानपत्र प्रदान किए जानेवाले कार्यक्रम में गई-"अब उसकी समझ में आया कि कुछ भी बेचा जा सकता है। कला, सौन्दर्य, प्रतिभा और विकलांगता भी। उसने नमाज़ पढ़ते हुए निष्ठुरता से अल्लाताला से कहा, तुम्हीं ने बनाया है न उन्हें अपाहिज? अब उसी की पूँजी बनाऊँगी।"[26] जीवन के आखिरी समय में वे पैदल जा-जाकर कीर्तन के अनेकों कार्यक्रम करते रहे। यहाँ तक कि मुंबई में पंडित द्वारकानाथ के लिए मात्र 300 रुपए के लिए पीछे बैठे तानपुरा बजाने के लिए बाध्य हुए।

निष्कर्षः गंधर्व में विरक्ति और विलास दोनों का मिलाप रहा। एक मर्यादित पुरुष की भाँति लक्ष्मी के जीवन में पति कर्तव्य एवं दर्शकों पर अपनी छाप कायम करना और अचानक गौहर के साथ उस लौ में बह जाना कि देखनेवाले ठगे से रह गए। मधुमेह की शिकार गौहर की दिल का दौरा पड़ने से मृत्यु हुई। एक तरफ प्रारम्भिक अभिनय की दुनिया में उनका स्वर्णकाल था जिसमें वैभव, शान, ईश्वरीय प्रतिभा थीं। गंधर्व अपने व्यावहारिक जीवन के सूत्र भले ही दूसरों के हाथों में संचालन के लिए देते रहे हों, किन्तु अपने रंगकर्म के प्रति सचेत, जिज्ञासु, सूक्ष्म अध्य्यनशील जैसे गुणों में कमी न आने दी। जीवन के अंतिम समय में वे सोचते हैं-"इस देह में न जाने कितनी स्त्रियाँ निवास कर गई हैं। मायके आई बिटिया की तरह। सुभद्रा, भामिनी, रुक्मिणी, सिंधु, मेनका, द्रौपदी...न जाने कितनी...एक ही जन्म में न जाने कितने जन्म भोग लिए हैं इस देह ने...।"[27]

संदर्भ:

1अभिराम भडकमकर, (अनुवादक:थोरात गोरख), बालगंधर्व, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृष्ठ-22
2 वही, पृष्ठ-24
3 वही, पृष्ठ-25
4 वही, पृष्ठ-27
5 वही, पृष्ठ-34
6 वही, पृष्ठ-86-87
7 वही, पृष्ठ-55
8 वही, पृष्ठ-76
9 वही, पृष्ठ-83
10 वही, पृष्ठ-105
11 वही, पृष्ठ-121
12 वही, पृष्ठ-144
13 वही, पृष्ठ-149
14 वही, पृष्ठ-150
15 वही, पृष्ठ-177
16 वही, पृष्ठ-66
17 वही, पृष्ठ-197
18 वही, पृष्ठ-226
19 वही, पृष्ठ-216
20 वही, पृष्ठ-233
21 वही, पृष्ठ-254
22 वही, पृष्ठ-245
23 वही, पृष्ठ-320
24 वही, पृष्ठ-359
25 वही, पृष्ठ-367
26 वही, पृष्ठ-370
27 वही, पृष्ठ-389

◆ सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
माउंट कार्मल कॉलेज (स्वायत्त), बैंगलोर।
prix3030@gmail.com

किसान समस्याएँ : 'फाँस' उपन्यास के विशेष संदर्भ में

◆डॉ . धन्या बी

' जय जवान जय किसान '

भारत के पूर्व प्रधान मंत्री पं.लालबहादुर शास्त्री जी ने सैनिकों को, भारत की रक्षा के लिए उत्साहित करने के लिए 'जय जवान जय किसान' का नारा दिया। साथ ही किसानों को अपनी आय पर निर्भर रहने के लिए, खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने के लिए और अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित किया। यह बहुत लोकप्रिय नारा बन गया।

इस ऐतिहासिक नारे का महत्व यह है कि देश केलिए, किसानों और जवानों के योगदान को नहीं भुलाना चाहिए। एक मेहनत कर अन्न उपजाता है और देश का पेट भरता है, दूसरा दिन-रात दुर्गम सीमाओं पर मुस्तैदी से तैनात रहकर देश की हिफ़ाज़त करता है। हमें अपने घरों में सुविधापूर्वक रहते हुए, उनके परिश्रम, त्याग और बलिदान को भूलना नहीं चाहिए बल्कि उनका नमन करना चाहिए। यह सब आज पुराना नारा बन गया है। उपर्युक्त ऐतिहासिक नारे में जिन किसानों को प्राधान्य दिया था अब भारतीय समाज में उनकी स्थिति बहुत शोचनीय है।

'फाँस' उपन्यास के माध्यम से लेखक संजीव जी किसानों की दयनीय हालत का मार्मिक चित्रण किया है। धर्माचारियों का पाखंड और अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियों के छल-कपटों से पीड़ित भारत के छटपटाते किसान का व्यथापूर्ण चित्रण इसमें है । एक ओर अकाल और अतिवृष्टि में आवश्यक कपड़े न होकर सिर्फ एकमात्र साड़ी को तरसती शकुन जैसी औरतें हैं तो दूसरी ओर मालामाल होते बैंकें हैं, पंडे-पुजारी हैं, कंपनियों के मलिक हैं ।

बीज शब्द- कर्ज, साहूकार, शोषण, ऋण, विस्थापन, कारखाने, पंडे, पुजारी ।

आत्महत्या की समस्या : 'फाँस' उपन्यास किसानों की समस्याओं पर केन्द्रित है, जैसे-गरीबी और बेकारी से जूझते-जूझते किसान अपनी ज़िंदगी में हार माने बैठते हैं। किसान मरते दम तक खेती करते रहते हैं, फिर भी उनके साथ अन्याय होता है। सेठों, साहूकारों और बैंकों से कर्ज लेकर कृषि चलाता है, पर उनसे फसलें साहूकार छीन लेते हैं। इसी कारण किसानों का जीवन अत्यंत शोचनीय बन जाता है, यथा -"आज क्या कर क्या मंदिर क्या मस्जिद क्या साहूकार की दुकान, सर्वत्र उसी की चर्चा है, कौन था, क्यों फांसी लगायी..? अरे आदमी था भाई शेतकारी"।

किसानों की आत्महत्या निरंतर होने पर भी उसपर किसी की भी परवाह नहीं जाती है। जब वह मर जाता है तब बातें की जाती हैं कि कैसे मरा ? क्यों मरा? इसके बारे में कोई जाँच नहीं होता? सच्चाई यह है कि किसान लोग अपनी ज़िंदगी खेतों के साथ बिताते हैं, खेती ही उनका प्राण है। लेकिन सत्ताधारी किसानों की ज़मीन छीनकर उसमें नये कारखाने और योजनाएँ बनाते रहते हैं। किसानों का जीवन संकट में पड़ता है और अंत में वे आत्महत्या करने के लिए विवश बन जाते हैं।

उपन्यास में आद्यंत किसानों की आत्महत्या का मार्मिक चित्रण है। किसानों को धोखा देकर सत्ताधारी उनकी ज़मीन अपने हाथ में लेते हैं और वही किसानों को उसी ज़मीन में काम करवाकर शोषण करते हैं। विदर्भ में किसानो पर होने वाले इन छल-कपटों के द्वारा उपन्यासकार ने पूरे देश में किसानों की दयनीय स्थिति की ओर इशारा किया है।

अंधविश्वास की समस्या : गाँव में रहने वाले सदाशिव कुलकर्णी, नाग जोशी, निरंजन देवगिरी आदि ढ़ोंगी लोग मिलकर बनगाव के सभी गाँववालों को अंध-विश्वास की ज़जीरों से बांधकर सभी लोगों को अपने काबू में लाते हैं। सदानंद जैसे पुजारी ऐसी-ऐसी बातें करके किसान लोगों को इस प्रकार के जाल में फंसाते हैं कि किसान उनके हाथ की कठपुतली बन जाते हैं और उनकी सारी बातें वे मानते हैं। तांत्रिक बनकर बैठे ये लोग किसानों की भूमि हड़पने की योजनाएँ

बनाते हैं और सदानंद फूल गाँव में जाकर धोखा देने की कोशिश करता है। वह सभी से कहता है कि-"बुरी आत्मा की साया है, ऐसे ज्योतिषी ने बताया। जब तक दूर नहीं होता गाँववाले वहीं रहेंगे। गाँव बदरः निरंजन देवगिरी कोई अनुष्ठान करेंगे,साय हटेगा, फिर अपने - अपने गाँव लौटेंगे ।" [2]

शिक्षा की समस्या: किसान लोग खेती को ही अधिक महत्व देते हैं क्योंकि इससे वे अपना जीवन यापन करते रहते हैं। शिक्षा को वे अधिक महत्व न देते हैं। उनकी चिंता यह है कि बच्चों को शिक्षा देने से कोई लाभ न होगा। अपनी संकुचित मानसिकता से वे अपने बच्चों की आगे की ज़िंदगी अंधकार में पलट देते हैं । बच्चों को भी मज़दूरी करनी पड़ती है और इसी क्रमानुसार पूरा जीवन चलता है। प्रस्तुत उपन्यास में सिंधुताई अपनी होनहार लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखना चाहती है। इसीकारण मोहनदादा और सिंधुताई के बीच संघर्ष होता है। गाँववालों में इसपर जलन होती है और लड़कियों के बारे में गलत बातें फैलाते हैं। सिंधुताई के मन में भी शंका होती है और वह अपनी बेटियों को खेतों में काम करवाना चाहती है। कहती है कि- " मैं छुड़वा देती पढ़ाई। एक दम से। जो पढ़ाई खेती से घृणा करना सिखाये, स्वार्थी बनाये, वैसी पढ़ाई को चूल्हे में न डालूँ ।" [3]

अन्याय एवं शोषण की समस्या : किसानों पर होने वाले घोर अन्याय के बारे में भी लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। सरकार, नेता,साहूकार सभी किसानों का शोषण करते हैं। किसान लोग कभी-कभी अन्याय और शोषण के खिलाफ़ लड़ते हैं , शिकायत लेकर बड़े-बड़े दफ्तरों में जाते हैं तो वहाँ कोई उनका सुनता नहीं है । सभी उन्हें बाहर धकेल दिया जाता है। 'फाँस' उपन्यास में सत्तर वर्ष के दादाजी जो दलित भी हैं, इनके साथ भी अन्याय होता है। दादाजी अपने पर हो गये अन्याय के बारे में इस प्रकार बताते हैं- " पूरे मध्य भारत में इसी धान की खेती होती है- एच .एम .टी। दादाजी के धान की खेती? लेकिन विश्वविद्यालय ने कहा कि ना,ये तो हमारा धान है वह खुद इसे दुगुने दाम पर बेचने लगा, नाम बदलकर। "[4]

इसके साथ विस्थापन की समस्या, ऋण की समस्या, राजनैतिक समस्या, जाति भेद की समस्या आदि किसानों की अनेक समस्याओं का चित्रण इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया गया है।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'फाँस' उपन्यास में किसानों की आत्महत्या, अंधविश्वास, छुआछूत, कर्ज, राजनैतिक समस्या, आर्थिक समस्या, अशिक्षा, विस्थापन, अन्याय, शोषण आदि अनेक समस्याओं के मार्मिक चित्रांकन मिलते हैं। इन समस्याओं का कारण उनकी अज्ञता ही है। इन घोर शोषणों से उनकी मुक्ति केलिए और आत्महत्या से उन्हें बचाने के लिए उनका आत्मविश्वास बढ़ाना ही चाहिए । इसके लिए उन्हें शिक्षित बनाना अनिवार्य है। यह भारत की हर एक नागरिक का कर्तव्य भी है। क्यों कि किसान ही हमारे अन्नदाता हैं। इस बात को मत भूलना। 'जय जवान जय किसान ' ।

आधार ग्रंथ

1. संजीव, फाँस, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली 2015

सहायक ग्रंथ

1. डॉ.संजीव की कहानियाँ शिल्प एवं शैलिगत अध्ययन, डॉ .स्नेहा पाटील, ए .बी .एस पब्लिकेशन वारणसी, 2013
2. संजीव जनधर्मी कथा शिल्पी, दिव्या डिस्ट्रीब्यूशन, कानपुर, 2011
3. हंस पत्रिका, राकेश बिहारी
4.त्रैमासिक ई पत्रिका, 'किसान जीवन की करुण गाथा', डॉ. वंदना तिवारी, 2017
5. गोदान, प्रेमचंद, 1935

संदर्भः

1 .संजीव - फाँस - पृ 9 2 . वही पृष्ठ - 20
3 . वही पृष्ठ -196 4 वही पृष्ठ – 181

◆ सहायक आचार्या
सरकारी कॉलज, आट्टिंगल, केरल।

उत्तर प्रदेश में महिला सशक्तीकरण के विविध आयाम

♦पंक्षी देवी ♦♦डॉ.नीति त्रिवेदी

सन्दर्भः- सम्पूर्ण राष्ट्र के निर्माण से सम्बन्धित जिन आधारभूत विषयों पर विचार करना महत्वपूर्ण है, उनमें महिला शिक्षा एवं महिला सशक्तीकरण अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाते हैं। 'सशक्तीकरण' से तात्पर्य किसी व्यक्ति की उस योग्यता से है जिसमें वह अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय स्वयं ले सके। महिला सशक्तीकरण से महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाना है, ताकि उन्हें रोज़गार, शिक्षा और आर्थिक विकास में बराबरी के अवसर मिल सकें जिससे वे सामाजिक स्वतंत्रता की उन्नति कर सकें और वे भी पुरुषों की तरह अपनी सभी आकांक्षाओं को पूरा कर सकें। सरकार द्वारा महिला सशक्तीकरण के लिए समय-समय पर कई योजनाएँ बनाई गईं तथा संचालित की जा रही हैं। महिला एवं बाल विकास कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तीकरण के लिए अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। प्रस्तुत प्रपत्र उत्तर प्रदेश में महिला सशक्तीकरण के विषय में जानकारी प्रदान करता है।

महत्वपूर्ण बिन्दुः- महिला सशक्तीकरण, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास।

प्रस्तावनाः- मानव एक स्वतंत्र प्रकृति का प्राणी है जिसको अपने संपूर्ण विकास, स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन करने तथा अपने विचारों को प्रकट करने के लिए अधिकारों की आवश्यकता पड़ती है। अधिकार ही मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रबलता प्रदान करते हैं। महिला सशक्तीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है। महिलाएँ राष्ट्र के निर्माण में अहम भूमिका निभाती हैं। जब तक महिलाएँ जागरूक नहीं होंगी तब तक राष्ट्रीय विकास की धारा में अपनी सक्रिय भूमिका तथा भागीदारी नहीं निभा पाएँगी और राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव नहीं होगा। राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं की आम भूमिका को दृष्टि में रखते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "यदि जनता में जाग्रति पैदा करनी है तो महिलाओं में जाग्रति पैदा करो। एक बार वह आगे बढ़ती है, तो परिवार आगे बढ़ता है, गाँव तथा शहर आगे बढ़ते हैं, स्वयं सारा देश आगे बढ़ता है। इस तथ्य से सभी सहमत हैं कि किसी भी स्वस्थ एवं विकसित समाज के निर्माण में स्त्री एवं पुरुष दोनों की सहभागिता आवश्यक है। सशक्तीकरण की गतिविधियों के द्वारा महिला समाज के नवजागरण और कल्याण की ठोस शुरुआत की जानी है। महिला सबलीकरण आधुनिक शिक्षा में सामाजिक न्याय की जड़ों को मजबूत करता है। समाज के रवैये में बुनियादी परिवर्तन लाकर महिलाओं के विवेक, सामर्थ्य एवं योग्यताओं को मिलने वाली चुनौतियों के बीच उन्हें प्रोत्साहित करता है। इसका मूल उद्देश्य है कि लोगों को मुख्य धारा में लाया जा सके।"[1]

साहित्यिक समीक्षाः- दुनिया में कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ महिलाओं को हाशिए पर रखकर आर्थिक विकास संभव हुआ। महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य व देश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। महिला सशक्तीकरण को दुनिया के लगभग सभी समाजों में स्त्री-पुरुष भेदभाव को कम करने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा जाता है। सशक्तीकरण का अर्थ एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके अंतर्गत शक्तिहीन लोगों को अपने जीवन की परिस्थितियों को नियंत्रित करने के बेहतर अवसर मिलते हैं। महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है कि पुरुष-प्रधान समाज में स्त्रियों के साथ होने वाले भेदभाव के बारे में उन्हें जागरूक बनाये। सिंह, कुशल व गौतम ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष दिया है कि महिला एक अत्यधिक प्रस्तावित स्वयं सहायता समूह की सदस्यता के बाद सकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है। महिलाओं की स्वयं समूह की भागीदारी उन्हें आंतरिक शक्ति को खोजने,

आत्मविश्वास अर्जित करने, सामाजिक और आर्थिक सशक्तीकरण और क्षमता का निर्माण करने योग्य बनाती है।[2] लोकेश के अनुसार स्वसहायता समूहों के पास देश में सामाजिक आर्थिक क्रान्ति लाने की शक्ति है। यह आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति और निर्णय निर्माण को परिवर्तित करने में योगदान कर सकती है जिससे महिलाओं की बाहरी गतिविधियों में वृद्धि होगी।[3]

शोध के उद्देश्यः-

- उत्तर प्रदेश में महिला सशक्तीकरण की आवश्यकता व योजनाओं का अध्ययन करना।
- उत्तर प्रदेश की महिलाओं की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना ।
- महिलाओं को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिए महत्वपूर्ण योजनाओं का अध्ययन करना।

शोध पद्धतिः- प्रस्तुत अध्ययन द्वारा उत्तर प्रदेश में महिला सशक्तीकरण के विविध आयामों का अध्ययन किया जाना है। महिला सशक्तीकरण से महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। प्रस्तुत शोध द्वितीय सामग्री पर आधारित है, विशेषकर उत्तर प्रदेश का आर्थिक सर्वेक्षण पर बल दिया गया है।

शोध विश्लेषणः- भारत के संविधान में महिलाओं और पुरुषों को न केवल समान अधिकार एवं सुविधाएँ दी गयी हैं बल्कि महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान भी किए गए हैं। देश में महिलाओं के स्तर और स्थिति को उन्नत करने के लिए समय-समय पर कई योजनाएँ और सामाजिक कानून बनाए गए हैं। महिलाओं के उत्थान के लिए भारत सरकार समय-समय पर विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाओं को क्रियान्वित भी करती है।

सशक्तीकरण का अर्थः- सशक्तीकरण का अर्थ महिलाओं को अपनी पसंद रखने और तय करने के अधिकार तथा संसाधनों की प्राप्ति तथा सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के निर्माण के लिए सामाजिक परिवर्तन की दशा को प्रभावित करने की क्षमता से है। अतः महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य है महिलाओं को पुरुषों के समान निर्णय लेने की पूर्ण स्वतंत्रता हो। [4]

महिलाओं का सशक्तीकरण समाज के लिए बहुत ज़रूरी है, क्योंकि जब तक महिलाएँ सशक्त नहीं होंगी तब तक कोई प्रगति नहीं हो सकती। उन्हें समाज में अपनी समान स्थिति के प्रति सजग और जागरूक बनाने की ज़रूरत है। महिला सशक्तीकरण के बिना प्रगतिशील समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। उत्तर प्रदेश में महिलाओं के सशक्तीकरण के बिना विकास की उम्मीद नहीं की जा सकती है। महिलाओं को सशक्त किए बिना प्रदेश के विकास की कल्पना एक कोरी कल्पना होगी। महिलाओं को कृषि उद्योग के साथ-साथ सेवा-क्षेत्र में भी लाना पड़ेगा, जिससे महिलाओं की आबादी को क्रियाशील जनसंख्या में परिवर्तित किया जा सके। तभी हम उत्तर प्रदेश के विकास की कल्पना कर सकते हैं।[5]

शोध पद्धतिः- प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश राज्य की महिलाओं की आर्थिक स्थिति, महिला सशक्तीकरण की योजनाओं की आवश्यकता, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव आदि का अध्ययन किया गया है। शोध कार्य में प्रमुखतः वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रारूप को लिया गया है। प्रस्तुत शोध द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।

सामाजिक सशक्तीकरणः- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिला की छवि बदल रही है। उसके लिए विभिन्न उपबंध अधिनियमों एवं योजनाओं के क्रियान्वयन से जहाँ उनके लिए शिक्षा के द्वार खुले हैं वहीं रोज़गार के भी नए अवसर उत्पन्न हुए हैं। आज प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के अस्तित्व एवं उनकी भागीदारी को स्वीकारा जा रहा है। वर्तमान में महिला सशक्तीकरण की आवश्यकता को न केवल समाज और परिवार, बल्कि सरकार के स्तर से भी अनुभव किया गया है। हमारे स्वतंत्र देश के संविधान में महिला और पुरुष के आधार पर नागरिकों में भेद नहीं किया गया है बल्कि समान अवसर दिए गए हैं। महिलाओं के संपूर्ण सशक्तीकरण की दिशा में बहुत अधिक प्रयासों की आवश्यकता है।[6]

भारतीय परिपेक्ष्यः- महिलाओं की भागीदारी न केवल उनके सशक्तीकरण का माध्यम है, बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। आर्थिक रूप में महिलाओं की सुरक्षा होने से समाज में समानता और विकास की प्रक्रिया तेज़ी से आगे बढ़ेगी।

सैद्धांतिक परिपेक्ष्यः- जॉन स्टुअर्ट मिल ने 'द् सब्जेक्शन् ऑफ वीमन' पुस्तक लिखी और कहा कि लैंगिक न्याय पाने के लिए महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार व शिक्षा के अलावा राजनीतिक और आर्थिक अधिकार उपलब्ध होने चाहिए।[7]

आर्थिक सशक्तीकरणः- सामाजिक-आर्थिक प्रगति को जानने के लिए वहाँ की महिलाओं की स्थिति एवं स्तर का आकलन करना आवश्यक है। ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार धीमी गति से हुआ है, जिसका मुख्य कारण ग्रामीण विकास कार्यक्रम का सीमित प्रभाव रहा है। विभिन्न क्षेत्रों के विकास में लाभ से महिलाओं को वंचित नहीं रखा जाए और सामान्य विकास कार्यक्रमों के साथ-साथ महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम भी चलाए जाएँ। ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं का मुख्य कार्य खेती से सम्बन्धित अनेक कार्य हैं, जैसे- बुवाई, निराई, गुड़ाई चारे की कटाई, अनाज निकलवाने आदि तक सीमित हैं। इसके अतिरिक्त महिलाएँ मुर्गी पालन, पशु पालन और मधुमक्खी पालन के कार्य भी करती हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र की 83 प्रतिशत महिलाएँ कृषि और कृषि से संबंधित कार्यों में लगी हुई हैं।[8]

लैंगिक समानताओं के लिए योजनाएँ- लैंगिक समानताओं से निपटने के लिए राज्य सरकार ने बाल विवाह रोकने के लिए मुख्यमंत्री शादी अनुदान योजना तथा सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा के लिए लक्ष्मी बाई सुरक्षा पेंशन योजना, कन्या विवाह और नारी मिशन शक्ति योजना आदि वर्ष 2018 में शुरू कीं। कन्या उत्थान योजना के अन्तर्गत सरकार की सबसे महत्वपूर्ण योजना 'कन्या सुमंगला योजना' है, इसमें किसी लड़की के जीवन का उसके जन्म से लेकर स्नातक तक आच्छादन होता है। यह समाज कल्याण, स्वास्थ्य और शिक्षा विभाग द्वारा संयुक्त रूप से क्रियान्वित होती है। अल्पावास गृहों, कामकाजी महिला आवासों, एवं सुरक्षा गृहों के ज़रिए भी महिलाओं की मदद की जाती है। राज्य सरकार का खास लक्ष्य इन योजनाओं के द्वारा महिला सशक्तीकरण करना है।[9]

उच्च शिक्षा के लिए लड़कियों को प्रोत्साहनः- लड़कियों को उच्च शिक्षा में बढ़ावा देने के लिए अविवाहित लड़कियों को इण्टरमीडिएट की पढ़ाई पूरी होने पर 25000 रुपये और स्नातक की पढ़ाई पूरी होने पर 50000 रुपये का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। क्षेत्रीय प्रशासन में महिलाओं के आरक्षण के अनुसार भागीदारी होनी चाहिए। क्षेत्रीय प्रशासन पुलिस प्रखंड अनुमंडल और जिला स्तर के कार्यक्रम में महिलाओं की भागीदारी आरक्षण योजना के अनुसार बढ़ाई जायेगी।

वैकल्पिक बैंकिंगः-"बैंक हमारी गाँव जीविका में, आम तौर पर जीविका के स्वयं सहायता समूह के सदस्य हैं। स्वचालित संचालित ग्राहक सेवा केंद्र (सीएसपी) खोलने में सहयोग के लिए प्रमुख बैंकों के व्यावसायिक संवाददाताओं के साथ मिलकर काम शुरू किया गया है।

सूक्ष्म बीमा- बीमा टीम द्वारा प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना (पीएमजेजेबीवाई) और प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना के अंतर्गत शत-प्रतिशत नामांकन का लक्ष्य राज्य के सभी जिलों में प्राप्त किया गया है। वर्ष 2019 में लगभग 20.88 लाख स्वयं सहायता समूह सदस्यों का नामांकन किया गया है।

मिशन शक्ति योजनाः- उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा मिशन शक्ति योजना जुलाई 2022 में प्रारम्भ की गई है। महिला सुरक्षा, संरक्षण व महिला सशक्तीकरण हेतु एक अम्ब्रेला योजना है।

वन स्टॉप सेंटर योजनाः- 'वन स्टॉप सेंटर' को

लोकप्रिय रूप से सखी के नाम से जाना जाता है। इस कार्यक्रम को 1 अप्रैल 2015 को निर्वाण फंड से लागू किया गया था। वन स्टॉप सेंटर भारत में विभिन्न स्थानों पर स्थापित किए गए हैं।

नारी शक्ति पुरस्कारः- नारी शक्ति पुरस्कार राष्ट्रीय स्तर का पुरस्कार है, जो महिलाओं और संस्थाओं द्वारा महिलाओं, विशेष रूप से कमज़ोर व हाशिए पर खड़ी महिलाओं के लिए विशिष्ट सेवाएँ प्रदान करने के प्रयासों को मान्यता देता है।

मुख्यमंत्री कन्या सुमंगला योजनाः- असमानताओं और भेदभावों को समाप्त करने के उद्देश्य से, सरकार के साथ-साथ गैर-सरकारी संगठनों द्वारा अतीत और वर्तमान परिदृश्य में प्रयास किए गए हैं। सरकार द्वारा किए जा रहे मौजूदा प्रयासों के अलावा, उत्तर प्रदेश ने सशर्त नकद हस्तांतरण योजना शुरू की है। यह बालिकाओं के विकास के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने का एक पहल है। इसका उद्देश्य कन्या भ्रूण हत्या और बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराइयों को रोकना है, साथ ही उन्हें उच्च शिक्षा, रोज़गार और समाज में एक महत्वपूर्ण स्थिति की ओर बढ़ने के अवसरों पर ध्यान केंद्रित करना है। [10]

निर्भयाः- इस कार्यक्रम का उद्देश्य 75,000 महिलाओं को राज्य के बैंकों से जोड़ना है। वे सस्ते ब्याज दरों पर ऋण प्राप्त कर सकेंगी और राज्य सब्सिडी का लाभ उठा सकेंगी।

एकीकृत ग्रामीण विकास परियोजनाः- महिलाओं को रोज़गार देने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम है। भारत सरकार द्वारा 1978 में आई आर डी पी की शुरुआत की गई थी और 1980 में इसे लागू किया गया था। हालांकि, सहायता प्राप्त कुल परिवारों में महिला लाभार्थियों का प्रतिशत 1985-86 में 9.90 प्रतिशत से बढ़कर 1996-97 में 33.12 प्रतिशत के लगभग हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि कार्यक्रम धीरे-धीरे महिला लाभार्थियों के उच्च प्रतिशत को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

खाद्य एवं स्वास्थ्य सुरक्षाः- 'खाद्य सुरक्षा' परिवारों की असुरक्षित स्थिति में कमी लाने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है। इसलिए जीविका की सामुदायिक विक्रय प्रक्रिया के द्वारा खाद्यान्नों और खाद्य सामग्रियों की ज़रूरत पूरा करने के लिए स्वयं सहायता समूह सदस्यों को खाद्य सुरक्षा कोष उपलब्ध कराने की पहल की है।[11]

शोध निष्कर्षः- महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने कई महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं, जो महिलाओं को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में सहायक हैं। इससे न सिर्फ महिलाओं का कल्याण होगा बल्कि उनके साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य का भी विकास होगा। आज आवश्यकता है कि महिलाओं को न केवल कृषि बल्कि उद्योग और सेवक क्षेत्र में आरक्षण दिया जाए। महिलाओं में उच्च शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए निःशुल्क उच्च एवं तकनीकी शिक्षा दी जानी चाहिए। आज सरकार महिलाओं के उत्थान, विकास और उन्हें सशक्त बनाने के लिए अनेक प्रयासों पर बल दे रही है। सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए बेहतर पहुँच सुनिश्चित करने के लिए महिला साक्षरता और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य देखभाल, उनकी स्थिति की पहचान और राजनीतिक सशक्तीकरण से संबंधित प्रयास ज़ारी रखने की आवश्यकता है। महिलाएँ अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति समय के साथ अधिक जागरूक हुई हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में महिलाएँ हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। महिलाओं का विकास जितनी तेज़ी से होगा, उतनी तीव्र गति से राज्य की प्रगति और समृद्धि के मार्ग प्रशस्त होंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1.दिनेश, नंदिनी डालमिया (2003), *नए आयामों को तलाशती नारी*, नवचेतन प्रकाशन, जयपुर, नई दिल्ली:

2.चौधरी (2010). *सशक्तीकरण एवं स्वसहायता*

समूह की अवधारणा व स्वयं सहायता समूह का प्रभाव, अध्याय-3

3.आर्य, रिंकी (2021). *महिला सशक्तीकरण में समूह सहायता की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन*, राधा कमल मुखर्जी: चिंतन परंपरा, वर्ष 23, अंक 1 (जनवरी-जून), पृ. 149

4.मलिक, अमित (2017). *महिला सशक्तीकरण: भारत की नई तस्वीर*, नई दिल्ली: विश्वभारती पब्लिकेशन्स, पृ. 19

5.मीना, बाबूलाल (2022). *भारतीय नारी के विविध आयाम*, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

6.गजभिये, व. एवं हिरकने (2017). *महिला सशक्तीकरण: विभिन्न आयाम*. नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स, दरियागंज

7.कुमार, बिपिन (2009). *वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तीकरण: विविध आयाम*, नई दिल्ली: रीगल पब्लिकेशन, पृ. 8

8.शर्मा, प्रेम नारायण एवं वाणी, विनायक (2011). *गरीबी उन्मूलन एवं महिला सशक्तीकरण*. भारत बुक सेंटर, पृ. 138

9.द्विवेदी, आर. ए. (2005). *महिला सशक्तीकरण: चुनौतियाँ एवं राजनीतियाँ*, भोपाल: पूर्वाशा प्रकाशन

10.सिंह, राजेन्द्र गुर्जर (2020). *महिला सशक्तीकरण एवं मानवाधिकार*. जयपुर: राज पब्लिशिंग हाउस

11.मौर्य, एस. ए. (2012). *भारतीय समाज में महिला विमर्श एवं यथार्थ*, जयपुर: पोइन्टर पब्लिशर्स, पृ. 8

◆शोधार्थी, शिक्षा संकाय,
वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान
panchhiyadav30@gmail.com
मो.7905383392

◆◆असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय,
वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान
neetitrivedi@banasthali.in
मो.9574017084

सही उत्तर चुनें

यह मत किसका है?

1. "एक भाषा के एक रूप के कथ्य को दूसरे रूप में प्रस्तुत करना भी अनुवाद है। छन्द में बताई बात को गद्य में उतारना भी अनुवाद है।"

2. "एक भाषा की पाठ्य सामग्री को दूसरी भाषा की समानार्थक पाठ्य सामग्री से प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है।"

3. "भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद है इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन।"

4. "अनुवाद एक शिल्प है जिसमें एक भाषा में लिखित संदेश के स्थान पर दूसरी भाषा के उसी संदेश को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है।"

[a .कैटफोर्ड b. न्यूमार्क c. डॉ.एन.ई विश्वनाथ अय्यर d. भोलानाथ तिवारी]

सही उत्तर:

1. c 2. a. 3. d. 4. b

◆ डॉ.पी.लता
मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी

मुद्रकतथा प्रकाशकडॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशनएन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रिततथाडॉ.पी.लताद्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14, Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha